# बच्चों की
# आदतों का विकास

राममूर्ति मेहरोत्रा,
एम० ए० ( आगरा ), एम० ए० ( लखनऊ ), बी० एड०

विद्या-मंदिर लिमिटेड

प्रकाशक
विद्या-मन्दिर लिमिटेड,
कनाट सरकस, नईदिल्ली

मूल्य
दो रुपया

मुद्रक
अमरचन्द्र जैन
राजहंस प्रेस, सदर बाजार, दिल्ली

आदरणीय

श्री पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए०

प्रधान मन्त्री नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

के

**करकमलों में**

सादर समर्पित

# विषय-सूची

# भूमिका

हम अध्यापको तथा अभिभावकों का बच्चो से अधिक सम्बन्ध रहता है, परन्तु हममे से कितने उनको समझते हैं, यह बताना कठिन है। यद्यपि उनके पथ-प्रदर्शन का भार हम लोगों पर है, तथापि हमारी दशा उस अंधे पथ-प्रदर्शक की भाति है जो अपने अनुयायियों को कहीं भी ले जा सकता है। प्रायः माता-पिता तथा अध्यापकगण लड़के-लड़कियों को एक ही डडे से हॉका करते हैं। उनको यह नहीं मालूम कि ऐसा करना भूल है, अप्राकृतिक है। लड़के-लड़कियों के शारीरिक, मानसिक तथा भावात्मक विकास में बड़ा अन्तर है। यह अन्तर किशोरावस्था में प्रत्यक्षतः दिखाई देने लगता है। इतना ही नही, अपितु वे उनसे हर समय एक सा परिश्रम लेते रहते हैं, जिससे उनके शारीरिक विकास की गति अवरुद्ध हो जाती है, कारण कि शीघ्र बढ़ने के समय अधिक कार्यभार पडने से बच्चा भली भाति नहीं बढ पाता। बच्चो के अनेकों रोग ऐसे हैं जिनके होने का एक निश्चित समय होता है, परन्तु इससे अविज्ञ होने के कारण हम रोगों से बचाव नहीं कर पाते है और अपने अज्ञान तथा असावधानी के कारण सैकड़ो बच्चों की जान खो बैठते हैं। प्रायः अध्यापक शारीरिक-दण्ड-निषेध नियम से जान बचाने के लिये छोटे २ बच्चों को घण्टों बेंच पर खडा कर देते हैं अथवा उनसे सैकड़ों बार उठक-बैठक कराकर कनपकड़ी कराते हैं। यह अस्थि-वृद्धि के लिये बडा अहितकर है। अध्यापक बच्चों को घर पर करने के लिये इतना काम दे देते हैं कि वे रात को, जब तक नींद से आखे मिच नहीं जातीं, कार्य करते रहते हैं और फिर उल्टा-सीधा खाना खाकर स्कूल को दौड़ते हैं और यदि क्लास टाइम टेबिल न हुआ, तो फिर विद्यार्थी क्या पूरा कुली ही हो जाता है। कभी-कभी ग्रथियों (glands) से उचित प्रकार रस निष्क्रमित न होने से बालक——विशेषकर किशोरावस्था में——अनावश्यक रूप से घट-बढ़ जाते हैं। प्रायः ग्रथि-सस्थान से अनभिज्ञ अध्यापक तथा अभिभावक इसे कुसंग का फल समझकर उनके चरित्र को सन्देह की दृष्टि से देखने लगते हैं।

मनोविज्ञान से अविज्ञ अध्यापक बच्चो के बुद्धि सम्बन्धी अन्तर की उपेक्षा करके सब बच्चो को एकसा समझते हैं, उनको एक ही प्रणाली से शिक्षा देते हैं और सफलता न होने पर बच्चों को मारते-कूटते हैं। इतना ही नहीं, अपितु कभी २ बालक क्षीण-दृष्टि, बधिरपन, टांसिल, एडीनाइड्ज आदि रोगो से रुग्ण होने के कारण मन्द बुद्धि तथा फिसड्डी हो जाते हैं, परन्तु माता-पिता तथा अध्यापक इसे उनकी लापरवाही का फल समझकर उनको मारा-पीटा करते हैं। प्रायः माता-पिता तथा अध्यापकगण समझा करते हैं कि काम-वृत्ति की उत्पत्ति सहसा यौवनोद्गम काल मे होती है, परन्तु फ्रायड के मतानुसार इसका जन्म बालक के साथ ही हो जाता है और इसके द्वारा बाल सम्बन्धी कठिनाइयों की सरलतापूर्वक व्याख्या हो सकती है। बच्चो को किस अवस्था मे क्या खेल खिलाने चाहिए क्या नहीं, इसका प्रायः लोगों को ज्ञान नहीं होता। वे बच्चो को परस्पर चिढ़ाते और बड़ों को नाम रखते देखकर बुरा मानते हैं, परन्तु वे यह नहीं जानते कि इन सब प्रवृत्तियो का अच्छा उपयोग भी हो सकता है। खेल शिक्षण का एक विशेष अंग है। इस पुस्तक मे उक्त सभी प्रवृत्तियो, समस्याओं तथा सह-शिक्षा, काम-शिक्षा आदि पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। उसके अतिरिक्त झूठ बोलना, चोरी करना, घर से भागना आदि बच्चों की कुप्रवृत्तियों तथा समस्याओं की भी विस्तृत व्याख्या की गई है।

उक्त पुस्तक की सभी बाते वर्षों के बाल-निरीक्षण तथा अध्ययन का फल हैं और अनुभव द्वारा सत्य तथा प्रामाणिक सिद्ध हो चुकी हैं। यदि अध्यापक गण तथा अभिभावक इससे लाभ उठा सकें, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

एस० के० पी० हाईस्कूल<br>इलाहाबाद<br>२५-८-४५.

रामभूर्ति मेहरोत्रा,<br>एम० ए०, बी० एड०<br>( हैडमास्टर )

१

# मानव-जीवन और उसकी अवस्थाएँ

सामान्यतः प्रत्येक प्राणी का जीवन तीन अवस्थाओ मे विभक्त माना गया है—बचपन, जवानी और बुढापा। यह प्रश्न दूसरा है कि ये अवस्थाये विभिन्न प्राणियो मे किस समय प्रारम होती हैं और कब तक रहती हैं, परतु इसमे कोई सदेह नही कि विभिन्न प्राणियों के जीवन-काल के अनुसार थोडे-बहुत समय के लिए ये तीनो अवस्थाएँ प्रत्येक प्राणी के जीवन मे आती हैं। मानव-जीवन अन्य जीवधारियो की अपेक्षा अधिक रहस्यमय तथा चमत्कार-पूर्ण वस्तु है, अतः पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक तथा भारतीय जीवन-विज्ञान-वेत्ता इन तीन अवस्थाओ से सतुष्ट न रह सके और उन्होने इन जीवन-अवस्थाओ की विस्तृत व्याख्या करने की चेष्टा की।

जेम्स एम० रास[1] ने जीवन की अवस्थाएँ निम्न लिखित मानी हैं:—

| | | |
|---|---|---|
| कुमार अवस्था | ( Infancy ) | जन्म से ५ वर्ष तक |
| यौगण्ड अवस्था | (Late childhood) | ५ से १२ वर्ष तक |
| किशोर अवस्था | (Adolescence) | १२ से १८ वर्ष तक |
| प्रौढ अवस्था | (Maturity) | १८ वर्ष के बाद |

जेम्स एम० रास, स्टुअर्ट एच० रोब आदि पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने

---

१ जेम्स एस० रास 'एजुकेशनल साइकोलाजी' पृ० १३६

तरुणावस्था को दो कालो में विभक्त किया है--यौवनोद्गम अथवा किशोर (Puberty) और यौवन (Adolescence)। प्रायः यौवनोद्गम का समय दो वर्ष माना गया है और वह लड़कियो में १२ से १४ वर्ष तक और लडकों में १४ से १६ वर्ष तक रहता है और वह लड़कियों मे १२ से १६ वर्ष तक और लडकों मे १३ से १७ वर्ष तक माना गया है। इस प्रकार १२ वर्ष के पश्चात् लडकी और लड़के की आयु मे, यदि दो वर्ष का नहीं तो कम से कम एक वर्ष का अन्तर अवश्य हो जाता है।

हमारे भारतीय मनोवैज्ञानिक तो और भी आगे बढ गए हैं। श्रीमद्भागवत के श्लोक--

> कौमारं पञ्चमाद्वान्तं यौगण्डं दशमावधि।
> कैशोरमापञ्चदशात् यौवनञ्च तत परम्॥'[१]

के अनुसार जीवन की अवस्थाएं निम्नलिखित हैं—

| | | |
|---|---|---|
| कौमार अवस्था | -- | जन्म से ५ वर्ष तक |
| यौगण्ड अवस्था | — | ५ से १० वर्ष तक |
| किशोर अवस्था | — | १० से १५ वर्ष तक |
| युवा अवस्था | — | १५ वर्ष के बाद |

भरत धृतस्मृति के श्लोक,

> 'आषोडशाद्भवेद् बालस्तरुणस्तत उच्यते।
> वृद्धःस्यात् सप्ततेरूर्ध्वं वर्षीयान् नवते परम्॥'

मे १५ वर्ष के बाद की अवस्थाएँ भी दी हैं, जो कि निम्नलिखित हैं—

| | |
|---|---|
| बाल अवस्था | जन्म से १६ वर्ष के आदि तक |
| तरुण अवस्था | १६ वर्ष के आदि से ७० वर्ष तक |
| वृद्ध अवस्था | ७० वर्ष से ९० वर्ष तक |
| वर्षीयान | ९० वर्ष के बाद |

---

२. श्रीमद्भागवत दशम स्कंध, द्वादश अध्याय, श्लोक ३७

इतना ही नहीं, अपितु युवावस्था का भेद भी नहीं छूटने पाया है। 'आषोडशाद्भवेद्बालः पञ्चत्रिंशत् युवा नरः' (हारीत) के अनुसार नर अर्थात् पुरुष ३५ वर्ष तक युवा रहता है। अतएव पुरुष १५ से ३५ तक तरुण और ३५ से ७७ तक प्रौढ रहता है।

अब रहा प्रश्न स्त्रियो की अवस्थाओ का। कालिदास ने उसकी भी पूर्ति कर दी है।

**'आषोडशाद्भवेद्बाला तरुणी त्रिंशता मता।**
**पञ्च पञ्चाशत प्रौढा, वृद्धा भवति तत्परम्॥'** **(कालिदास)**

—के अनुसार स्त्रियों की अवस्थाए निम्न लिखित हैं :—

| | |
|---|---|
| बाला— | १६ वर्ष के आदि तक |
| तरुणी— | १६ वर्ष के आदि से ३० वर्ष तक |
| प्रौढा— | ३० वर्ष से ५५ वर्ष तक |
| वृद्धा— | ५५ वर्ष के बाद |

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्त्रियों की तरुण तथा प्रौढ अवस्थाओं का समय पुरुषों की अपेक्षा कम है। स्त्रिया ५५ वर्ष मे ही वृद्ध हो जाती हैं, जब कि पुरुष ७० वर्ष तक तरुण बने रहते है। अतः भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने ३० वर्ष के पश्चात् स्त्री-पुरुप की अवस्थाओं के काल-विभाग मे पडने वाले अतर की ओर भी ध्यान दिया है और स्पष्टतः बता दिया है कि यह अतर ३५ वर्ष तक ५ वर्ष का और ७० वर्ष तक १५ वर्ष का होता है अर्थात् आयु के साथ यह अतर भी बढता जाता है। इतना ही नहीं, अपितु उन्होंने १६ वर्ष के पूर्व लडके-लडकियों की आयु मे पडने वाले अतर की ओर भी सकेत किया है। स्मृति के श्लोक—

**'अष्ट वर्षा भवेद्गौरी, दश वर्षा च कन्यका।**
**सम्प्राप्ते द्वादशे वर्षे, कुमारीत्यभिधीयते॥'**

के अनुसार लडकी १२ वर्षकी आयु मे कुमारी होती है और **'कौमारं तन्त्रमते षोडशवर्ष पर्यन्तम्'** के अनुसार लड़का १६ वर्ष में

कुमार होता है। अतः लडके-लडकी मे १६ वर्ष तक ४ वर्ष का अतर हो जाता है।

पाश्चात्य तथा भारतीय वर्गीकरणो मे दो बड़े भारी भेद हैं। प्रथम, पाश्चात्य वर्गीकरण के अनुसार यौगण्ड अवस्था १२ वर्ष तक रहती है और तत्पश्चात् किशोर अवस्था आती है, परतु भारतीय वर्गीकरण मे यौगण्ड अवस्था १० वर्ष के पश्चात् ही समाप्त हो जाती है और ११ वे वर्ष से किशोर अवस्था आरंभ हो जाती है। द्वितीय, पाश्चात्य मनोवैज्ञानिको ने १२ से १६ वर्ष तक लडके-लडकी की आयु मे २ वर्ष का अतर बताकर ही सतोष कर लिया है। भारतीय मनोवैज्ञानिको ने यद्यपि १६ वर्ष तक ४ वर्ष का अतर माना है, तथापि इतने पर ही वे सन्तुष्ट नही हुए। वे इसको आगे बढाकर ७० वर्ष तक ले गए हैं और उन्होने यह सिद्ध कर दिया है कि यह अतर १२ से प्रारंभ होकर ७० वर्ष तक बराबर बढता जाता है। यहॉ हम इन दोनो बातो की आलोचना करेगे। शरीर के विकास पर जलवायु का अधिक प्रभाव पडता है। यही कारण है कि अफगानी तथा पजाबी आदमी बगाली तथा बिहारी आदमियो की अपेक्षा अधिक हृष्ट-पुष्ट, लम्बे-चौडे तथा बलिष्ठ होते हैं, उत्तरी ध्रुव के निकटवर्ती देशा मे लडकियो को २५-३० वर्ष की अवस्था तक मासिक धर्म नही होता, परन्तु भारतवर्ष मे १२–१३ वर्ष की अवस्था मे ही होने लगता है। 'दशमे कन्यका प्रोक्ता अत ऊर्ध्वं रजस्वला' ( स्मृति ) के अनुसार तो लडकी केवल १० वर्ष तक ही कन्या रहती है और तत्पश्चात् 'रजस्वला' हो जाती है। अरब में तो लड़की ६ वर्ष मे ही विवाह के योग्य समझ ली जाती है। अतः सम्भव है कि पाश्चात्य देशों मे ठड के कारण यौगण्डावस्था देर तक चलती हो और तदनुसार किशोरावस्था देर मे आरम्भ होती हो, परन्तु भारतवर्ष एक गर्म देश है यहॉ १० वर्ष के पश्चात् किशोरावस्था प्रारभ हो जाती है जैसा कि बी० एन० झा ने भी कहा है:—

In India the onset is on an average a year earlier both for boys and girls than in the colder countries of the west."[1] अर्थात् पश्चिम के ठंडे देशो की अपेक्षा भारत मे लडके और लडकियो की किशोरावस्था का आरम्भ लगभग १ वर्ष पहले होता है। अतएव इस दृष्टि से भारतीय वर्गीकरण पाश्चात्य वर्गीकरण की अपेक्षा अधिक शुद्ध तथा उपयोगी है। दूसरी दृष्टि से भारतीय वर्गीकरण विस्तृत तथा पूर्ण तो है, परन्तु अत्यन्त प्राचीन काल का होने के कारण वह समयानुकूल नही रहा है। शरीर के विकास पर जलवायु के अतिरिक्त काल अर्थात् तत्कालीन भावो तथा विचारो का भी बहुत प्रभाव पड़ता है। प्राचीन काल मे २५ वर्ष तक लोगों को धोती बाँधनी भी नहीं आती थी, परन्तु आजकल वे इस आयु तक चार-पाँच बच्चो के बाप हो जाते है। प्राचीन काल मे मनुष्य ६०-७० वर्ष तक तरुण रहता था, 'साठा सो पाठा'। परन्तु आजकल तो मनुष्य इस अवस्था मैं परलोक सिधार जाता है। प्राचीन काल में २४-२५ वर्ष तक मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचारी रहते थे और भोग-विलास तथा काम सम्बन्धी बाते समझते तक न थे, परन्तु आजकल १२-१४ वर्ष मे ही बालक सब बाते जान जाते हैं। इसके अतिरिक्त लडके-लड़कियो मे भी शीघ्र ही बडा अन्तर हो जाता है। अतः भारतीय वर्गीकरण अनुपयोगी है और इसमें सशोधन की आवश्यकता है। साराश यह है कि दोनों ही वर्गीकरण अशतः सत्य होने पर भी त्रुटिपूर्ण तथा सशोधनात्मक हैं। अतः जलवायु, काल तथा बालक-बालिकाओं के आयु-भेद का ध्यान रखते हुए उक्त दोनो वर्गीकरणो का समन्वय करना युक्ति-सगत होगा।

पाश्चात्य देशो की अपेक्षा भारतवर्ष उष्ण देश है, अतः यहा किशोरावस्था १२ वर्ष के पश्चात् आरम्भ नहोकर ग्यारहवे वर्ष ही मे आरम्भ हो जाती है और लड़के लडकियां मे अन्तर दिखाई देने लगता है।

---

१. बी० एन० झा; 'माडर्न एजुकेशनल साइकोलाजी पृ० ४०१

१२ वर्ष के पश्चात् लडके-लडकियो मे लगभग १ वर्ष का अन्तर हो जाता है, जैसा कि वी० एन० झा का कथन है, 'the onset of Puberty occurs in boys between 13 and 17 years and in girls between 12 and 16 years'[1] अर्थात् किशोरावस्था लडको मे १३ से १७ वर्ष तक और लडकियो मे १२ से १६ वर्ष तक रहती है। लडकियाँ १२ से १४ वर्ष तक और लडके १४ से १६ वर्ष तक बहुत तेजी से बढते हैं। इस प्रकार १८ वर्ष तक लगभग दो वर्ष का अन्तर हो जाता है जो कि शनैः शनैः बढ़ता रहता है । अतः सर्वोत्तम वर्गीकरण इस प्रकार होगाः—

(अ) बाल्य-काल (Child & boy-hood)

| | |
|---|---|
| कुमार-अवस्था (Infancy) — | जन्म से ५ वर्ष तक |
| यौगण्ड अवस्था (Late childhood) | ५ से १० वर्ष तक (लडकी)<br>५ से १०-११ वर्ष तक (लड़का) |
| किशोर-अवस्था (Puberty) | १० से १४ वर्ष तक (लड़की)<br>१०-११ से १५-१६ वर्ष तक (लडका) |
| तरुण-अवस्था (Early adolescence)<br>(आ) प्रौढ़-काल Maturity & manhood | १४ से १६ वर्ष तक (लडकी)<br>१५-१६ से १८ वर्ष तक (लडका) |
| युवा-अवस्था (Adolescnce) | १६ से ३० वर्ष तक (स्त्री)<br>१८ से ३५ वर्ष तक (पुरुष) |

---

१. वी० एन० झा 'माडर्न एजुकेशनल साइकोलाजी', पृष्ठ ४०१

| | |
|---|---|
| प्रौढ़-अवस्था (Later adolescence) | ३० से ४५ वर्ष तक (स्त्री)<br>३५ से ५५ वर्ष तक (पुरुष) |
| वृद्ध-अवस्था (Old age) | ४५ के पश्चात् (स्त्री)<br>५५ के पश्चात् (पुरुष) |

बाल्य-काल जीवन का सर्व-प्रमुख तथा सुन्दर समय. है, अतः बच्चो के शारीरिक, मानसिक तथा भावात्मक विकास की संक्षिप्त मे चर्चा करके उनकी प्रमुख प्रवृत्तियो की विस्तृत रूप से व्याख्या की जायगी।

---

२

# जीवन-विकास

दिन के बाद रात, रात के बाद दिन, सुख के बाद दुःख, दुःख के बाद सुख, परिश्रम के बाद विश्राम, विश्राम के बाद परिश्रम यह चक्र चलता ही रहता है। प्रत्येक पेड़-पौधे तथा जीव-जन्तु के विकास की भी यही दशा है। शीघ्र वृद्धि (rapid growth) के पश्चात् अवरोध (Slowgrwth) और अवरोध के पश्चात् शीघ्र वृद्धि प्रत्येक प्राणी के जीवन मे अपने अपने समय पर क्रमानुसार आते जाते ही रहते है। अतः विकास के अनुसार जीवन मे दो प्रकार की अवस्थाए होती हैं—(१) अकस्मात् वृद्धि-काल (Springing up period) जिसमे शरीर अत्यन्त शीघ्रता से बढ़ता है, (२) पुष्टि-काल ( Filling out period ) जिसमे अकस्मात् वृद्धि-काल मे बढे हुए शरीर की पुष्टि होती है। जिस प्रकार किसी कला के सीखने मे बीच-बीच मे विश्राम ( Period of consolidation ) लेना आवश्यक है, किसी देश को जीत कर उस पर अधिकार-पुष्टि ( Consolidation ) करना आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार अकस्मात् वृद्धि-काल मे होने वाली बढ़न को दृढ करने के लिए पुष्टि-काल (Period of consolidation) अनिवार्य है। यही बात बालकों के जीवन-विकास मे मिलती है।

बालकों का विकास शारीरिक, मानसिक तथा भावात्मक तीन प्रकार से होता है और तीनों मे ही अकस्मात् वृद्धि तथा पुष्टि-काल होते हैं। मनुष्य के जीवन-विकास का हम निम्न प्रकार वर्गीकरण कर सकते हैं:—

शीघ्र-बढन की पहली अवस्था—जन्म से ३ वर्ष तक

दृढ होने की पहली अवस्था—३ से ५ वर्ष तक

शीघ्र बढन की दूसरी अवस्था—५ से ७ वर्ष तक
दृढ होने की दूसरी अवस्था—७ से ११-१२ वर्ष तक
शीघ्र बढन की तीसरी अवस्था—११-१२ से १५-१६ वर्ष तक
दृढ होने की तीसरी अवस्था—१५-१६ से १९-२० वर्ष तक

लगभग १९-२० वर्ष की अवस्था तक शरीर-वृद्धि अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है, तत्पश्चात् प्रत्यक्षतः कोई विशेष वृद्धि नहीं होती, हाँ अनुभव अवश्य बढता है। यह बात दूसरी है कि किसी-किसी मनुष्य की, जिसका विकास अल्पाहार, रोग, अत्यधिक दबाव, इत्यादि किसी कारण से पूर्ण रूपसे नही हो पाता है, अनुकूल परिस्थिति मिलने पर इस समय के पश्चात् भी मानसिक, भावात्मक और शारीरिक शक्तिया बढ़ती रहती हैं।

## विकास-काल और उनका समय

सामान्यतः प्रत्येक वृद्धि तथा पुष्टि-काल अपने निश्चित समय पर ही आता है, परतु बाह्य कारणों से वह विभिन्न व्यक्तियो मे आगे-पीछे भी हो सकता है। बाह्य कारणा में से प्रमुख समाज, जाति, जलवायु, लिंग-भेद, आहार, रोग, अत्यधिक दबाव, असामयिक तथा अत्यधिक परिश्रम, अत्यधिक स्वच्छंदता, इत्यादि है। एक उदाहरण से यह विषय स्पष्ट हो जायगा। आपने देखा होगा कि प्रायः छोटे बच्चे उत्सुकता के कारण विभिन्न वस्तुओ को छुआ-छेड़ा करते हैं और प्रायः तोड-फोड भी डालते हैं। अविज्ञ माता-पिता इसको शरारत के कारण समझ कर अथवा इस-लिए कि वे डरते रहे और भविष्य मे इस प्रकार की हानि न करें, उनको जोर से डाटते-डपटते तथा मार-पीट देते हैं। जिसका फल यह होता है कि अबोध बालक के मन मे एक प्रकार का डर बैठ जाता है और वह पिटने अथवा डाट पड़ने के डर से किसी वस्तु को नहीं छूता। फलतः वह सदैव के लिए सकोची तथा डरपोक बन जाता है और उसकी स्वाभाविक विकास-गति अवरुद्ध हो जाती है। यही दशा अन्य कारणों से भी होती

है। इनमें रोग सर्व प्रमुख कारण है और इसका निवारण बहुत कुछ मनुष्य के हाथ मे भी नहीं है। विभिन्न अवस्थाओं मे होने वाले रोगों की व्याख्या विस्तृत रूप से आगे की जायगी।

साराश यह है कि न तो यह ही आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति मे वृद्धि तथा पुष्टि की अवस्थाएं समान समय पर आवें और न यह ही आवश्यक है कि सब मनुष्यों मे एक ही समय तक वे रहे। अतः किसी अवस्था विशेष की पहचान उसके निश्चित समय मात्र से ही नहीं हो सकती अर्थात् उपर्युक्त वृद्धि तथा पुष्टि-काल पहचानने के लिए उनके निर्धारित समय के अतिरिक्त कुछ और भी जानना आवश्यक है।

निश्चित समय के अतिरिक्त प्रत्येक अवस्था की कुछ अपनी निजी विशेषताएं तथा बाह्य चिह्न भी होते हैं जिनसे वह सहज ही पहचानी जा सकती हैं।

## विभिन्न अवस्थाएं और उनकी पहचान

**शीघ्रबढन की पहली अवस्था**—(जन्म से ३ वर्ष तक)—बच्चा अपने जन्म के लगभग एक मास के पश्चात् से शीघ्र बढना आरभ होता है और जब तक उसके ऊपर-नीचे के चार दात निकलते हैं अर्थात् लगभग एक वर्ष तक वह अत्यन्त शीघ्रता से बढ़ता रहता है। तत्पश्चात् उसकी बढ़न की गति कुछ मन्द पड जाती है, तदपि वह लगभग ३ वर्ष तक काफी तेजी से बढ़ता रहता है। इस प्रकार बच्चे की बढ़न की पहली अवस्था की समाप्ति उस समय समझनी चाहिये जब उसके लगभग २० दॉत तथा डाढ़े निकल आवें। इस अवस्था के समाप्त होते-होते बच्चा दो-दो तीन-तीन शब्दो के पूरे-अधूरे तथा छोटे-छोटे वाक्य भी बोलने लगता है। (बच्चे की भाषा की विस्तृत चर्चा वाक्-शक्ति के विकास के साथ पृथक् की जायगी।)

**दृढ होने की पहली अवस्था**—(३ से ५ वर्ष तक) इस अवस्था में प्राय बच्चे तुतला कर बोला करते है। इस अवस्था के समाप्ति-काल तक

बालक के ४ डाढे और निकल आती हैं और कुल मिलाकर २४ दांत-डाढ़ हो जाते हैं। इस अवस्था के समाप्त होते-होते बालक के मुख का भोलापन कुछ-कुछ कम होने लगता है और पक्कापन आने लगता है।

**शीघ्र बढ़न की दूसरी अवस्था**—(५ से ७ वर्ष तक)–इस अवस्था मे बढ़न का सहसा बोझ पड़ने के कारण देखने मे बच्चा कुछ दुबला मालूम होने लगता है, उसके हाथ-पैर कुछ लम्बे हो जाते हैं, गाल कुछ पिचक जाते है और नाक कुछ उठी हुई मालूम होती है। मुख का भोलापन पूर्णतः जाता रहता है और पक्कापन आ जाता है। शैशवकाल का गोल-गोल भरा हुआ मुख अपने वंश के अनुसार बदल जाता है। शिर भी बढ़कर लगभग बड़े आदमी के बराबर हो जाता है।

**दृढ होने की दूसरी अवस्था**—(७ से १२ वर्ष तक)–इस अवस्था के प्रारंभ होते ही दूध के दांत उखड़ने लगते हैं और समाप्त होते-होते दूध के दांतों के स्थान मे स्थायी दांत पूर्णत निकल आते हैं।

**शीघ्र बढ़न की तीसरी अवस्था**—(११-१२ से १५-१६ वर्ष तक) इस समय जीवन-बसन्त अर्थात् किशोर अवस्था का प्रारंभ होता है, अतः बसंत ऋतु के प्रत्येक पेड़-पौधे, फूल-पत्तो की भांति बालक के अंग-अंग और नस-नस में एक नवीन शक्ति का उदय और जीवन का सचार होता है। आकार तथा भार दोनों बढ़ने लगते हैं। लड़के अधिक लम्बे और लड़कियाँ अधिक गोल तथा मोटी हो जाती हैं। लड़कियों की आवाज कुछ मधुर और लड़कों की कुछ कर्कश होने लगती हैं। इस अवस्था की सबसे बड़ी पहचान लड़कों के मुख पर दाढ़ी-मूछ के प्रारम्भिक चिह्न भूरी लोम-राशि निकलने लगना और लड़कियो का वक्षस्थल तथा स्तन बढ़ जाना है। इस अवस्था के प्रारंभ में बालको मे थोड़ा चिलबिलापन आने लगता है जो कि इस अवस्था के समाप्त होते-होते एक प्रकार की सकुचाहट में परिवर्तित होने लगता है। इस

समय बालकों की फैशन मे रुचि बढ जाती है और उनमे कुछ-कुछ स्वच्छंदता की प्रवृत्ति प्रबल होने लगती है। इसी हेतु लड़के कभी-कभी घर से भाग भी जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस अवस्था के अन्त तक लडके-लडकी पारस्परिक लिग-भेद को समझने लगते हैं और पहले की भाति स्वच्छदता पूर्वक एक साथ खेलने-कूदने के स्थान मे परस्पर मिलने जुलने, एवं एक साथ बैठने-उठने मे भी संकोच करने लगते हैं।

दृढ़ होने की तीसरी अवस्था (१५-१६ से १९-२० वर्ष तक)—इस अवस्था के प्रारभ होते ही मुख की भूरी लोम-राशि काले चिकने बालों मे परिवर्तित हो जाती है। अब बालको की कोकिल-वाणी सुनने मे नही आती और उनका क्षीण मधुर स्वर पूर्णतः भारी, मोटा तथा कर्कश हो जाता है। इस अवस्था के अत तक बढन लगभग पूर्ण हो जाती है। इस अवस्था के समाप्त होने के पश्चात् आकार मे कोई वृद्धि होती दिखलाई नही देती, जैसा कि होम्स ( Homs ) का कथन है, 'Physical stature is not complete before the nineteenth or twentieth year of life'[1] अर्थात् शारीरिक आकार १९-२० वर्ष के पूर्व पूर्ण नही होता। इस अवस्था के अत तक लडकियो की शारीरिक शक्ति ११ वर्ष की अपेक्षा लगभग दुगुनी और लड़को की तिगुनी हो जाती है।

---

१ स्टुअर्ट एच० रोव० 'दी फिजीकल नेचर आफ दी चाइल्ड' पृष्ठ १२१-१२२

: ३ :

# बच्चों के रोग और उनके उपचार[1]

**बढ़न**.—जैसा कि पीछे बताया जा चुका है बच्चो की बढन दो तरह से होती है। कभी तो वे सहसा तेजी से बढते हुए दिखाई देते हैं और कभी उनकी बढन रुकती हुई-सी मालूम होती है जिसे हम मजबूत होने का समय कह सकते हैं। वे दोनो अवस्थाए बारी बारी से एक दूसरे के बाद आती हैं। प्रत्येक बालक जीवन मे तीन बार बढता हुआ और तीन बार मजबूत होता मालूम होता है, जिसका विस्तार-पूर्वक वर्णन पिछले अध्याय मे दिया जा चुका है। यह निर्विवाद है कि मजबूती की हालत के मुकाबले मे एकदम बढन की हालत में बदन के हिस्सो और ताकतो पर ज्यादा जोर पडता है और साथ ही साथ बढ़न मे लगे रहने की वजह से उन्हे बदन को मजबूत करने का मौका भी कम मिलता है। इसलिये बढन की अवस्था म रोग ज्यादा होते हैं।

**रोग**·—रोग की शरीर से एक तरह की लडाई है। यद्यपि कभी-कभी रोग यो ही हो जाया करते हैं, लेकिन बदन मे यदि किसी कारण से कमजोरी हो जाती है, तो वे बहुत जल्दी आ दबाते हैं। ज्यो-ज्यों शरीर मे ताकत बढती जाती है, त्यो-त्यों रोग होने का डर भी कम होता जाता है। बदन मे सब से कम ताकत बचपन मे होती है। इसलिये उस समय में रोग भी ज्यादा होते हैं। ज्यों-ज्यो बच्चे बडे होते जाते है, त्यों-त्या उनमे रोग से लडने को ताकत भी बढती जाती है। इसलिये छोटे बच्चों

---

१ यह लेख ३६ जनवरी, ४४ को आल इण्डिया रेडियो लखनऊ से पढा जा चुका है और डायरेक्टर महोदय की आज्ञा से प्रकाशित किया जा रहा है।

के मुकाबले मे बडे बच्चा को रोग कम होते हैं। मौत के लेखे से पता चलता है कि सबसे ज्यादा बच्चे १ वर्ष तक, इससे कम १ से ५ वर्ष तक और सबसे कम ६-७ से ११-१२ वर्ष तक मरते हैं। इस समय तक बालको में रोग से लडने की ताकत काफी बढ जाती है। इसलिए इसके बाद कुछ मामूली रोग तो जरूर होते हैं लेकिन मौत का उतना डर नहीं रहता। ७ साल तक होने वाले रोग इतने सख्त होते हैं कि अगर उनसे बच्चा बच भी जाता है तो वे उसके आख कान वगैरा बदन के किसी हिस्से मे कोई ऐसा निशान छोड जाते हैं कि बडे हो जाने पर भी आसानी से बताया जा सकता है कि इसको बचपन मे यह रोग हुआ है। जैसे चेचक मे मु ह पर दाग रह जाते हैं और कोई तो इसमे काने तथा बहरे तक हो जाते हैं इन रोगो मे एक अच्छाई भी है। वे जिन बच्चों को एक बार हो जाते हैं उनको दुबारा नहीं होते और अगर होते भी हैं तो इतने जोर से नहीं होते। यही वजह है कि डाक्टर उन बच्चों के टीका नहीं लगाते जिनके एक दफा चेचक निकल चुकी होती है।

**आयु और उसमे होने वाले रोग**—अचानक बढ़न की पहली अवस्था अर्थात् पैदा होने से तीन वर्ष तक। एक साल तक के बालक को दूध के रोग होते हैं जैसे मु ह, पेट, सूखा, फोडे-फुन्सी, मु हा, फसली आँखे दुखना इत्यादि। दाँत निकलने के पहले सात महीने की आयु मे प्रायः फोडे फुन्सी, मु ह-पेट, आँखे उठना, सर्दी मुहाँ इत्यादि और १ से ३ साल तक दस्त, जिगर, सूखा खसरा नमूनिया आदि होते हैं। मु हा सूखा, खसरा और आँखे उठना छूत के रोग हैं। इनके रोगी से बच्चो को अलग रखना चाहिए। मुहाँ झूठा पानी पीने से, खसरा सास से और आख दुखना पहनने के कपडों से फैलते हैं।

**मजबूती की पहली अवस्था अर्थात् ३ से ५ वर्ष तक**:—क्यो कि अभी बच्चों मे शक्ति कम होती हैं इसलिये कभी तो खसरा, निमोनिया इत्यादि ३ साल तक होने वाले रोग बाद मे भी चलते रहते हैं और कभी

५ से ७ साल तक या अचानक बढ़न की दूसरी हालत में होने वाले रोग कुछ जल्दी शुरू हो जाते हैं।

अचानक बढ़न की दूसरी अवस्था अर्थात् ५ से ७ वर्ष तकः—प्रायः इसमें जुकाम, तरह-तरह के बुखार और खसरा, काली खाँसी, कनवर, चेचक, मोतीझाला, डिफ्थीरिया इत्यादि छूत के रोग होते हैं। इनमें खसरा और काली खासी का सबंध गले से है। कभी-कभी इसके आराम हो जाने पर भी सास की नली में कुछ असर बाकी रह जाता है जिससे खासी बढ़ते बढ़ते सास या टिक हो जाता है। काली खासी भी उड़ कर लगने वाला रोग है। इसके रोगी के साथ बच्चों को उठने-बैठने, खेलने-कूदने, खाने-पीने न देना चाहिये। डिफ्थीरिया भी बहुत खराब रोग है। उसमें मौत बहुत जल्दी होती है। इसलिये जैसे हो इसके उपचार की चिन्ता करनी चाहिये। इसकी खास पहचान मुंह का तमतमा जाना, गले का रुंध जाना, कोई चीज निगल न सकना इत्यादि है। यह गंदी हवा से बहुत जल्दी बढ़ता है और थूक से फैलता है। इसके कीडे सास में बहुत दूर तक तो नहीं पहुंच पाते, लेकिन रुमाल आदि से कपड़ों तक जरूर पहुंच जाते हैं। चेचक सूखी हुई पपड़ी से फैलती है। इसलिये जब तक पपड़ी सूख कर न उतर जाय दूसरे बच्चों को रोगी और उसके कपड़ों से अलग ही रखना चाहिये। इस अवस्था में कभी-कभी दूध के दांत उखड़ते वक्त मसूड़े भी पक जाते हैं। इसलिये दांतों को साफ रखना चाहिये।

मजबूती की दूसरी अवस्था अर्थात् ७ से ११-१२ वर्ष तकः—इसमें पुराने रोगों के फिर से उलट पड़ने का बहुत डर रहता है। इस वक्त अकसर मोती झाला आदि छूत की कठिन बीमारियाँ होती हैं। इसलिये जब तक रोगी शरीर में पूरी तरह ताकत न आजाय उससे ज्यादा मेहनत न लेनी चाहिये। कभी-कभी खसरा आराम होने के बहुत दिनों बाद भी कान बहने लगता है। किसी-किसी बालक के टांसिल भी

बढ जाते हैं और उसे एडीनाइड्ज रोग हो जाता है। इसकी पहचान यह है कि बालक मुँह फैलाये हुए बेवकूफ सा बैठा रहता है, मुँह से साँस लेता है, उसे जुकाम जल्दी-जल्दी होता है। वह बहुत देर तक पढ लिख नही सकता और बहुत जल्दी थक जाता है। इसमे कान बहने से कभी-कभी बालक बहरा हो जाता है। बहरापन कभी-कभी कान का पर्दा फट जाने से भी हो जाता है। इसलिये बालको के कान मे 'कानाबाती कानाबाती कुर्र' करने के बहाने जोर से किल्ली न मारनी चाहिये। और न उनको सीक, दियासलाई आदि से कान कुरेदने देना चाहिये। अगर बच्चा गाने से भागे लेकिन अपना नाम जल्दी सुन ले, तो समझ लेना चाहिए कि वह बहरा है। प्राय. बालक एक कान से बहरे होते हैं। बालक के कान में कानाफूसी की तरह बहुत धीरे से १६-२६, २१-३१, २५-३५, ७६-८६ इत्यादि कहकर या घडी की टिक-टिक सुना सुना कर हम बडी आसानी से पता लगा सकते हैं कि बालक कौन-से कान से बहरा है। बहरे बालकों को पढने के बदले लिखने का काम ज्यादा करना चाहिये। लोग अकसर बालकों के कान उमेठा करते हैं और माँ-बाप गहना पहनाने के लिये लडकियों के कान छेदा करते हैं। इससे अकसर कान पक जाते हैं। कान उमेठने या छेदने के लिए नही बल्कि सुनने के लिए हैं।

**अचानक बढ़न की तीसरी अवस्था अर्थात् ११से १५-१६ वर्ष तक—**

इस वक्त चेचक, काली खाँसी, खसरा, मोतीझारा इत्यादि खून की बीमारियाँ मामूली तरह हो जाती हैं। इस आयु मे लडकियाँ महीने से बैठने लगती हैं। उन दिनों मे उनसे ज्यादा मेहनत न लेनी चाहिये। बचपन मे पढते-लिखते वक्त ठीक जगह कापी किताब आदि न रखने या ठीक तरह न बैठने से अकसर बालकों की कमर इस वक्त बुड्ढों की तरह झुक जाती हैं, कूबड निकल आता है। सीना सिकुड़ जाता है और आँखें कमजोर हो जाती हैं जिससे पास या दूर की चीज साफ नही दिखाई देती। इसलिए यह देखना चाहिये कि बालक लेटकर न पढे, हाथ गाल पर और

कोहनी डेस्क आदि पर टेक कर न पढे –लिखे। कापी टेढ़ी करके एक तरफ को झुककर न लिखे । इतना भारी बस्ता स्कूल न ले जाय कि बोझ के मारे उनको एक ओर झुकना पडे—इसके लिये उन्हें हिन्दी-उर्दू आदि उनकी मातृ-भाषा मे टाइमटेबिल बना देना चाहिये । वे कमर झुका कर न बैठे। रोशनी उनके सामने या दायें से न आकर आगे पीछे या बॉये से आये। कापी या किताब ऑख से लगभग एक फुट से अधिक पास या दूर न रखनी चाहिए।

## मजबूती की तीसरी अवस्था अर्थात् १५-१६ से १६-२० वर्ष तक:-

इस समय शरीर में ताकत काफी बढ़ जाती है और बीमार पड़ने का ज्यादा डर नहीं रहता। हॉ, कभी-कभी पिछली कमजोरी या खानदानी प्रभाव से दिक का रोग हो जाता है । इसके होते ही रोगी को अलग कर देना चाहिए। दिक के कीडे कफ में होते हैं। जब कफ खुश्क हो जाता है, तो वे धूल के साथ उड कर हवा में मिल जाते है और सास के जरिये फेफडों में पहुँच जाते हैं। इसलिये फर्श, मेज, कुर्सी इत्यादि साफ रखने चाहिये और साफ हवा आने के लिये खिडकियॉ खुली रखनी चाहिएँ। कभी-कभी फर्श को फिनैल से धो देना भी अच्छा है।

इस आयु में कुछ बालक ऐसे भी पाये जाते हैं जिनमें यों तो कोई रोग दिखाई नहीं देता लेकिन फिर भी उनका रग पीला पडता जाता है; गाल पिचक जाते हैं। उनको कब्ज की शिकायत रहती है और दिन प्रति दिन बराबर दुबले और चिड़चिडे होते जाते हैं। उनको घर से बाहर निकलना अच्छा नहीं लगता और वे बड़ी जल्दी थक जाते हैं । यह हालत ज्यादा बीडी-सिगरेट पीने, खाना–पीना ठीक तरह न मिलने, बहुत पढने-लिखने, पूरी नीद न सोने, किसी कुटेव मे पड़ जाने इत्यादि से हो जाती है । प्रायः बालक उल्टा सीधा खाना खाकर स्कूल को झपटते हैं, जिमसे खाना अच्छी तरह नहीं पच पाता। खाना हमेशा धीरे-धीरे तसल्ली से खाना चाहिये और खाना खाने के बाद दो चार

मिनट आराम कर लेना चाहिए। इस अवस्था में बालकों को खेलने-कूदने, व्यायाम करने, आपस में मिलने-जुलने, मनोरंजक पुस्तको के पढ़ने आदि में लगाने के साधन उनके अभिभावकों को जुटाने चाहिएँ। इस अवस्था मे बालकों का जितना अधिक ध्यान शरीर और मन के विकास की ओर लगाया जायगा उतना ही उन्हें बुरी आदतों से बचाया जा सकता है। इस अवस्था में उन्हें एकान्त तथा आराम कम से कम मिलना चाहिए।

**रोगो के सम्बन्ध में विशेष बातें**:—दिक, सूखा, जुकाम, सिर दर्द साफ हवा न मिलने से, रीढ की हड्डी के रोग लिखते पढते समय ठीक तरह न बैठने से, आँख के रोग किताब रोशनी आदि ठीक तरह न रखने से और घबडाहट दिल पर चोट लगने से, तम्बाकू पीने से और अपने बडे की हालत देखने आदि से बढ़ जाती है। इस आयु मे प्रायः बालक बीडी, सिगरेट आदि पीने लगते हैं। सिगरेट, अपना उदाहरण सामने रख कर, समझा बुझा कर और मुंह या कपडों से बदबू आने पर टोक कर आसानी से छुड़ाई जा सकती है।

---

# बच्चों की शारीरिक-वृद्धि

## शरीर-वृद्धि की विशेषताएँ:—

जन्म-जात मानव शिशु-ससार के समस्त शिशुओ से अशक्त होता है। वह साधारण से साधारण आपत्ति से भी अपनी रक्षा नही कर सकता। यदि जन्म के पश्चात् उसे उसी पर छोड़ दिया जाय और उसकी देख-रेख न की जाय, तो उसका दो चार घण्टे भी जीवित रहना कठिन है; परन्तु वह १६–२० वर्ष मे ही इतनी उन्नति कर जाता है और बलवान हो जाता है कि ससार के समस्त प्राणियों से आगे निकल जाता है। अतएव मानव-शिशु की शारीरिक तथा मानसिक वृद्धि अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक तथा तीव्र गति से होती है और कुछ ही वर्षों में समाप्त हो जाती है, परन्तु इसके यह अर्थ नहीं है कि शिशु तथा प्रौढ मनुष्य मे कोई विशेष अन्तर ही नही होता और बच्चा पहले से ही इतना पूर्ण रहता है कि थोडी-सी वृद्धि से ही उसका पूर्ण विकास हो जाता है। टर्मन ( Terman ) का कहना है कि "The child is different from the adult in every fibre, every blood corpusele, every bone cell and in the relative proportions of all parts'[1] अर्थात् प्रत्येक ततु, प्रत्येक रक्त-अणु, प्रत्येक अस्थि-कोष्ठ और उसी अनुपात से समस्त शरीरावयवों मे शिशु प्रौढ़ से भिन्न है। प्रौढ़ होने पर जन्म-जात शिशु की अपेक्षा उसका शिर दूना, धड

---

१ पाल हैनली फर्के; 'दी ग्रोइंग ब्वाय, पृष्ठ ७

तिगुना, भुजाएं चौगुनी, पैर पचगुने, ऊँचाई तिगुनी मोटाई चौगुनी और तौल सोलह सत्रह गुना हो जाता है। शरीर-वृद्धि सम्बन्धी निम्न लिखित विशेषताएँ ध्यान में रखनी चाहिएँ:—

(१) शरीर-वृद्धि न तो जीवन भर होती है और न सदैव एक ही गति से होती है, अन्यथा मनुष्य बढते-बढते २५–३० फुट लम्बा और ५–७ फुट चौडा होकर पूरा देव हो जाता। शरीर-वृद्धि १६–२० वर्ष की अवस्था तक पूर्ण हो जाती है और कभी तीव्र गति से, विशेषतः प्रारम्भ मे, और कभी शनैः-शनैः होकर अपनी अन्तिम सीमा को पहुँच जाती है।

(२) कोई शरीरावयव तीव्रता से बढता है और कोई शनैः-शनैः। किसी की वृद्धि शीघ्र पूर्ण हो जाती है और किसी की देर से, कोई एक समय बढता है और कोई दूसरे समय, अर्थात् समस्त मॉस-पेशियॉ, अस्थियॉ तथा अन्य शरीरावयव क्रमानुसार समान गति से एक ही समय अथवा एक ही अनुपात से नहीं बढते। यदि ऐसा होता तो प्रौढ मनुष्य एक बडे भारी शिर, बडी भारी तोंद तथा छोटे-छोटे हाथ-पैरों वाला एक विचित्र वनमानुष होता; क्योंकि जन्म के समय बच्चे का शिर सीने से बड़ा (समस्त शरीर का लगभग १।४ लम्बा) धड हाथ-पैर से बड़ा, पेट बडा तथा फूला हुआ एवं भुजाये टागो से बडी होती हैं! दो एक उदाहरणों से अन्य बातों का भी स्पष्टीकरण हो जायगा। यथा, शिर वृद्धि का १।३ भाग प्रथम ६ मास मे, द्वितीय १।३ तीन वर्ष तक और शेष १।३ लगभग ८ वर्ष की आयु तक पूर्ण हो जाता है। अतः ८ वर्ष तक बच्चे का शिर मनुष्य के शिर के बराबर हो जाता है और तत्पश्चात् १२–१४ वर्ष तक अप्रत्यक्ष रूप से बहुत शनैः-शनैः बढ़ता है एवं पूर्ण होने पर लगभग १. १।२ सेर हो जाता है। कूल्हे की अस्थियाँ १५–१६ वर्ष की आयु में सहसा बढ जाती हैं। फेफडे १२ से १६ वर्ष तक अधिक बढते हैं; ७–८ वर्ष की आयु में दिल अन्य शरीरावयवों

की अपेक्षा कम बढता है, यही कारण है कि ७–८ वर्ष का बच्चा शीघ्र थक जाता है। अभिभावकों तथा शिक्षको को चाहिए कि किसी शरीरावयव विशेष की अकस्मात् वृद्धि के समय उससे अधिक परिश्रम न ले, अन्यथा अधिक भार पडने के कारण उसकी पुष्टि नही हो पाती और वह दुर्बल रह जाता है।

(३) लड़को की अपेक्षा लड़कियों की मास-पेशिया, अस्थिया आदि अधिक शीघ्र बढती तथा कडी होती हैं। यही कारण है कि लडकों में किशोरावस्था ११ वर्ष के पश्चात् प्रारभ होती है, परतु लडकियो मे १० वर्ष के पश्चात् ही प्रारंभ हो जाती है। ११ वर्ष के लड़के-लडकियो मे मानसिक भेद उतना नही होता, परन्तु शारीरिक भेद बहुत अधिक हो जाता है। अतएव उन स्कूलों मे जहॉ सहशिक्षा है अर्थात् लडके-लड-कियॉ दोनो एकसाथ पढते हैं, यौगण्ड तथा किशोरावस्था के संधिकाल मे लडके-लडकी दोनो को एक ही विषय मे समान गति करते देखकर और उनकी मानसिक शक्तियो मे कोई विशेष अन्तर न पाकर प्रायः अध्यापक यह समझ बैठते हैं कि उनकी शारीरिक शक्तियों मे भी कोई भेद नहीं है और दोनो से एक-सा शारीरिक परिश्रम लेते हैं तथा उनको एक साथ एक ही खेल खिलाते और व्यायाम कराते हैं। वास्तव मे यह उनकी भूल है। इस अवस्था मे लड़कियॉ लडको से शीघ्र थक जाती हैं। अतः इस अवस्था मे हम उनको पढाने-लिखाने मे भले ही साथ रख ले, परन्तु खेल तथा व्यायाम मे उनको एक साथ रखना किसी प्रकार भी ठीक नही है। इस समय लडकियों के व्यायाम के अभ्यास तथा खेल लड़कों से भिन्न और सरल होने चाहिएँ।

(४) प्राय• देखा गया है कि मोतीझारा, निमोनिया आदि कठिन रोगों से केवल बढन ही नहीं रुक जाती, अपितु कभी-कभी अस्थियों पर रोग-चिन्ह भी पड जाते हैं और जब तक पूर्ववत् साधारण स्वास्थ्य प्राप्त नहीं हो जाता, वे अस्थियो पर पडे रहते हैं। उदाहरणार्थ किसी प्रकार के

रोग, व्यतिक्रम मानसिक क्षोभ आदि से प्रायः नखों पर रेखा-चिन्ह पड़ जाते हैं और जब तक रोग का प्रभाव तथा उसके द्वारा होने वाली दुर्बलता दूर नही होती, तब तक वे नखो पर श्वेन खुरेच से पड़े रहते हैं। अतः अभिभावको तथा शिक्षकों को चाहिए कि जब तक अस्थियो पर इस प्रकार के रोग चिन्ह दिखाई देते रहें, बच्चों से अधिक परिश्रम न ले। इससे केवल बढन ही देर से नही होती, अपितु कभी-कभी रोग के उलट पडने का भी डर रहता है।

(५) शारीरिक-विकास मे क्षतिपूर्ति भी एक प्राकृतिक नियम है। यदि किसी कारण से किसी बालक का कोई अग कमजोर या वेकार हो जाता है, तो वह उसकी पूर्ति अन्य अगो से कर लेता है। उदाहरणार्थ जब किसी मनुष्य का दाहिना हाथ टूट जाता है या किसी कारण से वेकार हो जाता है, तो वह बाये हाथ से लिखना पढना आदि सब कार्य अच्छी तरह कर लेता है। मैंने एक लकवे के मारे हुए रोगी को पैर के अगूठे से लिखते हुए देखा है। कारण यह है कि किसी व्यक्ति का कोई अग दुर्बल हो जाता है, तो वह सदैव उसके लिए चिंतित रहता है और इस कमी को वह अपने अन्य किसी अग द्वारा पूरा करने की चेष्टा करने लगता है। फल यह होता है कि वह केवल उस कमी को ही पूरा नहीं कर लेता, अपितु उससे भी कही आगे बढ जाता है। यही कारण है कि पेड की कलम की भॉति टूटी हुई अस्थि जुडने पर पहले से अधिक मजबूत हो जाती है।

**अस्थि-पंजर**:—नव जात शिशु का अस्थि-पजर कोमल-अस्थियों द्वारा और प्रौढ़ का दृढ़ अस्थियो द्वारा निर्मित है। बच्चे की अस्थियॉ शनैः-शनैः बढ़ती तथा दृढ होती हैं और यौवनोद्गम काल मे लगभग १५ वर्ष तक लड़कियों की तथा लगभग १६ वर्ष तक लडकों की बहुत-सी अस्थियॉ पूर्ण हो जाती हैं। बचपन में ये अस्थिया इतनी कोमल होती हैं कि शीघ्र ही लचक जाती हैं और लगभग एक वर्ष तक तनिक-सी असावधानी से प्रायः बच्चों

की हँसली, खवा, हाथ आदि उखड़ जाया करते हैं। अतः छोटे बच्चों से कठिन परिश्रम नही कराना चाहिए। हम देखते हैं कि प्रायः २-३ वर्ष तक छोटे बच्चे चलते-चलते गिर पड़ा करते हैं और बैठे-बैठे लेट जाते हैं। इससे प्रकट होता है कि घुटनों चलने की अपेक्षा पैरों से चलने तथा खड़े होने में भी बच्चा को अधिक परिश्रम करना पड़ता है और वे शीघ्र थक जाते हैं। इसका प्रत्यक्ष कारण यह है कि जो भार उनको प्रारम्भिक शैशवावस्था में चार पैरों पर सम्भालना पड़ता था वह अब उन्हें दो ही पैरों पर सम्भालना पडता है; और चूंकि बच्चों के तलुए छोटे और शरीर का भार-केन्द्र ऊंचा होता है, अतः बच्चों के लिये अधिक समय तक खड़े रहना भी कठिन परिश्रम का कार्य हो जाता है; परन्तु खेलने-कूदने मे उनको शीघ्र थकान प्रतीत नहीं होती। इसका कारण यह है कि वे एक ही स्थिति मे नही रहते, उठने बैठने, लोटने-पोटने, दौड़ने-धूपने, कूदने फाँदने, आदि में बराबर स्थिति-परिवर्तन करते रहते हैं। स्थिति-परिवर्तन के विषय मे एक जर्मन विद्वान् का कहना है 'Change of position or subject is the greatest rest' अर्थात् स्थिति अथवा विषय परिवर्तन सबसे बड़ा विश्राम है। अत' अभिभावकों तथा शिक्षकों को चाहिए कि छोटे बच्चों को अधिक देर तक खड़ा न रखे, जैसा कि प्राय. अध्यापक दण्ड स्वरूप किया करत हैं। कभी-कभी तो जब से शिक्षा-विभाग द्वारा दण्ड-निषेध नियम बना दिया गया है उससे बचने के लिये प्रायः अध्यापक बच्चों को ४०-४५ मिनट के पूरे घण्टे भर ही नहीं अपितु कई-कई घण्टे तक बराबर खड़ा रखते हैं अथवा ड्रिल मास्टर ड्रिल के घण्टे मे पूरे घण्टे भर बच्चों को खड़ा रखकर ड्रिल कराते रहते हैं। मेरी समझ से छोटे बच्चों को १५-२० मिनट से अधिक खड़ा नहीं रखना चाहिए। मेरे अनुमान से तीसरी-चौथी कक्षाओं मे १५-२० मिनट और पाचवीं-छठी कक्षाओं मे २०-२५ मिनट से अधिक ड्रिल नहीं करानी चाहिये। कक्षा मे जो बच्चे ५ से ७ वर्ष तक के हों उन्हें १५ मिनट से, जो ७ से १० वर्ष तक के हों, उन्हे २० मिनट से, जो १० से १२ वर्ष तक के हों उन्हें २५

मिनट से और जो १२ से १६ वर्ष तक के हो उन्हे ३० मिनट से अधिक खड़े नहीं रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रायः यह भी देखा गया है कि छोटे बच्चों को बहुत देर तक बैठे-बैठे सुस्ती आ जाती है। अतः १०-११ वर्ष की अवस्था तक अर्थात् छठी कक्षा तक अधिकतर कार्य-क्रम ऐसा रखना चाहिए जिसमें अध्यापक को कम और विद्यार्थियो को अधिक बोलना अथवा कार्य करना पड़े और साथ ही बच्चों को कभी उठना, कभी बैठना, कभी लिखना, कभी पढ़ना आदि पड़े अर्थात् इस समय शिक्षा प्रणाली 'Learning by doing' अर्थात् 'कर और सीख' होनी चाहिए। घण्टे भर तक एक ही जगह चुपचाप बैठे-बैठे लेक्चर सुनते रहना छोटे बच्चो के लिये असम्भव ही नही अपितु हानिकारक भी है। कभी-कभी बीच-बीच मे कक्षा के समस्त विद्यार्थियो को एक दो बार उठा-बैठा देना भी अत्यन्त लाभदायक है। व्यायाम के समय एक ही अभ्यास अधिक देर तक नहीं कराना चाहिए अपितु थोड़ी-थोड़ी देर बाद अभ्यास परिवर्तित करते रहना चाहिए। छोटे बच्चो के विषय मे एक बात और भी ध्यान म रखनी चाहिए। छोटे बच्चो की अगुलियो की अस्थियाँ तथा मास पेशिया अत्यन्त निर्बल होती हैं और वे भली भाँति कलम आदि नही पकड सकते। अत. उन्हें कापी पर लिखाना ठीक नहीं। उनसे श्याम पट्ट पर लिखाना चाहिए जिससे अगुलियों की अपेक्षा बाहु पर भार पडे।

किशोर अवस्था के प्रारभ होते ही बालक की अस्थियों मे प्रत्यक्ष परिवर्तन होने लगता है। इस समय अस्थिया लम्बी होकर अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती हैं और उनके सिरे दृढ़ता पूर्वक जुड जाते हैं। किशोर अवस्था कोमल अस्थियां (Cartileges) की बढ़न के लिए और यौवनोद्गम अस्थि-सयोग के लिए विशेष समय हैं। १५-१६ वर्ष के पूर्व अस्थिया और उनके जोड दुर्बल होते हैं। इस समय के पूर्व उन पर अधिक जोर पड़ने से उनके कुरूप हो जाने का डर है। अतः माता-पिता तथा अध्यापको को किशोर बच्चों को घर अथवा स्कूल मे अधिक परिश्रम

नही कराना चाहिए और न उन्हे अधिक देर तक एक ही स्थिति मे रखना चाहिए। प्रकृति-निरीक्षण (Nature study) के घटे मे मिट्टी खोदने, पौधे लगाने, पानी देने आदि मे, वुड वर्क (Wood work) के घटे मे आरी चलाने, रदा करने, बसूला चलाने, ठोका-पीटी करने आदि मे, जिल्दसाजी (Book binding) के घटे मे छेद करने, जिल्दे काटने इत्यादि मे किशोर बालको से और गृह विज्ञान (Domestic science) के घटे मे किशोर बालिकाओ से इतना कठिन परिश्रम न लेना चाहिए कि वे थक जाय। इन घटो मे बालको के उठने बैठने की स्थिति पर ध्यान देना भी आवश्यक है।

किशोर अवस्था में रीढ की अस्थि की ओर भी ध्यान रखना चाहिए। प्रायः छोटी अवस्था मे झुककर बैठने तथा खडे होने के कारण रीढ की अस्थि झुक जाती है और वे बचपन मे ही बुड्ढो की तरह कमर झुकाकर चलने-फिरने लगते हैं। रीढ की अस्थि अनुचित स्थिति में बैठने-उठने के अतिरिक्त प्रायः थकने के कारण भी झुक जाती है। अत• स्थिति के अतिरिक्त बच्चों के विश्राम का भी ध्यान रखना चाहिए। उनको अधिक समय तक एक ही स्थिति में न रहने देना चाहिए और थकन के समय दो-एक बार उठा बैठा देना चाहिए। इसके अतिरिक्त बैठने की बेंच या कुर्सी मेज से इतनी अधिक नीची अथवा मेज या डेस्क इतना अधिक ऊचा, अधिक पास या दूर भी न होना चाहिए कि बच्चे उचित प्रकार बैठकर लिख भी न सके। माता पिता तथा अध्यापकों के लिए बच्चों के लिखने-पढने के सामान का उचित प्रबध करना परमावश्यक है।

**रक्त-परिभ्रमण**:—बढन के समय मस्तिष्क तथा रक्त-परिभ्रमण पर अधिक भार पडने से बच्चों मे प्रायः चिडचिडापन, व्याकुलता, घबराहट आदि उत्पन्न हो जाते हैं। अतः अभिभावको तथा शिक्षकों को चाहिए कि बच्चों के खाने-पीने, सोने-उठने, कार्य-विश्राम इत्यादि की ओर विशेष ध्यान रखे। माता पिता को चाहिए कि बच्चों को स्कूल जाने से पूर्व

कम से कम इतना खाना अवशय खिलाये कि उन्हे दौड़ना न पड़े और शिक्षकों को चाहिए कि उन्हें घर के लिये इतना काम न दे कि सोने के समय तक काम करना पडे। सोने के एक घंटा पूर्व पढ़ना-लिखना छोड़ देना और तत्पश्चात् उचित तथा आवश्यक समय तक सोना नितात आवश्यक है। ड्रमड के अनुसार नीद-परिमाण [1] निम्न लिखित हैं:—

| आयु | समय |
|---|---|
| जन्म से १ मास तक | २० से २२ घण्टे तक |
| १ से ६ मास तक | १६ से १८ घण्टे तक |
| ६ से १२ मास तक | १४ से १६ घण्टे तक (११-१२ घण्टे रात्रि मे और शेष दो बार दिन मे) |
| १ से २ वर्ष तक | १२ से १४ घण्टे तक (एक बार दिन मे) |
| २ से ६ वर्ष तक | १२ घण्टे |
| ६ से १० वर्ष तक | ११ घण्टे |
| १० से १५ वर्ष तक | ६-१० घण्टे |
| १५ वर्ष के उपरान्त | ७—८ घण्टे |

किशोर अवस्था मे रक्त का दबाव बढ़ने लगता है, अतः बचपन की अपेक्षा इस समय हृदय तथा नाडो की गति मन्द पड जाती है। अतएव बालकों को इस समय ऐसे खेल खिलाने चाहिए जिनसे रक्त-परिभ्रमण बढे और दिल दृढ हो। उदाहरणार्थ हाकी, फुटबाल, लम्बी दौड, इत्यादि। प्रायः इस समय लगभग ६ से १४ वर्ष के बीच इच्छाओं के तृप्त न होने, अधिक चिन्ता, मानसिक क्लेश, क्षोभ, क्रोध, थकन, इत्यादि कारणों से बालकों मे हुक्का, सिगरेट, बीडी आदि पीने की आदत पड़ जाती है। कारण कि वे यह समझते हैं कि तम्बाकू पीने से क्षणिक शान्ति मिलती है, यद्यपि इसका अतिम फल बहुत हानि-कारक होता है। सिगरेट-बीडी पीने से रक्त परिभ्रमण उचित प्रकार नहीं हो

---

1 W B. Drummond कृत 'The Child' पृष्ठ ४२

पाता, दिल कमजोर हो जाता है और अनेको स्नायु सबंधी रोग हो जाते हैं। इस कुप्रवृति को, कारण मालूम करके जिस प्रकार भी हो, समूल नष्ट करना ही हितकर है। अन्यथा यह बढते-बढते बढ़ जाती है, अत मे दुख दायी होने पर भी इसका छूटना असभव नहीं तो अत्यत कष्टसाध्य अवश्य हो जाता है।

**पाचन-संस्थान** ( Alimentary system )

जन्म-जात शिशु के दात मसूडा के भीतर होते हैं। ये दात ८ वे ६ वे मास म निकलने प्रारम्भ होते हैं और वर्ष सवा वर्ष मे प्रायः ४-६ दात निकल आते हैं। जब तक दात नहीं निकलते लार भी कम बनता है और बच्चों मे श्वेतसार पचाने की शक्ति नहीं होती। अतः जब रोटी पूरी कुतरने के लिए उसके ऊपर नीचे के ४-६ दात न निकल आवे उसे दूध, सब्जियां और फलो का रस पेय पदार्थो के अतिरिक्त अन्न आदि नहीं देना चाहिए। आधुनिक खोजों ने यह सिद्ध कर दिया है कि केवल माता के दूध पर भी पले हुए बच्चे उतने स्वस्थ तथा हृष्ट-पुष्ट नही होते जितने दूध के साथ, फलों और सब्जियों के रस, अरारोट वगैरह के साथ पालने पर होते हैं। प्रायः मातायें दूध न होने अथवा लाड़-प्यार के कारण एक दो दात निकलते ही अथवा बच्चे के बैठने या घुटनों चलने लगते ही उसे खस्ता भुरभुरा पक्वान्न, दाल, खीर, खिचडी आदि भारी चीजें खिलाने लग जाती हैं। ऐसा करना ठीक नहीं, इससे आमाशय पर समय से पूर्व अधिक भार पड जाता है। जिससे बच्चे को पाचन शक्ति बिगड जाती है और उसका पेट अथवा जिगर आदि बढ़ जाता है। फल-स्वरूप कभी उसका पेट अफर जाता है, कभी दस्त हो जाते हैं और कभी मुँह आ जाता है। इसके अतिरिक्त छोटे बच्चो को रबड की निपिल आदि अथवा अगूठा भी अधिक नहीं चुसाना चाहिए; क्योंकि इससे दात टेढे-मेढे निकलते हैं। दात निकल आने पर भी भोजन का उचित प्रबन्ध रखना चाहिए,

अन्यथा दूध के दात शीघ्र खराब हो जाते हैं और सूखा आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

**ग्रंथि-संस्थान** ( Glaudular system )—स्वादिष्ठ भोजन देख कर हमारे मुँह से लार टपकने लगती है, किसी निकट सबधी की मृत्यु की खबर सुनते ही ऑखो से अश्रु-धारा बह निकलती है। यह लार अथवा अश्रु कहा से आते हैं। मनुष्य के शरीर मे अनेकों ग्रथियॉ हैं, जिनसे एक प्रकार का रस निकलता है। यह रस नली अथवा रक्त-धारा द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है और जहा इसकी आवश्यकता होती है पहुँच जाता है। यह रस शारीरिक, मानसिक तथा भावात्मक तीनों प्रकार की वृद्धि मे अत्यत सहायक है। यहॉ हम इसकी केवल शारीरिक वृद्धि की दृष्टि से विवेचना करेगे। यह रस कही भोजन पचाने मे, कही रक्त-संचालन मे और कहीं छूत के रोगो को रोकने मे काम आता है। युवावस्था प्रारभ होते ही लगभग १४ वॉ १५वॉ वर्ष लगते ही ऑखो मे ज्योति, मुख पर लावण्य, छाती मे अकड़, चाल मे गर्वपूर्ण झूम, देह मे कमनीयता इत्यादि परिवर्तन इसी रस का फल हैं। यह ग्रथियॉ तीन प्रकार की होती हैं नलीदार, लिम्फैटिक ( Lymphatic ) तथा नली हीन। सैलिवरी ग्लैंड्स ( Salibary glands ) नलीदार ग्रथियों के सुन्दर उदाहरण हैं। इनसे एक प्रकार की लार निकलती है जिसे सैलाइबा ( Saliba ) कहते हैं। यह लार भोजन पचाने मे बड़ी सहायता देती है। लिम्फैटिक ग्रंथियों का स्थान विशेष नही है, अपितु यह सारे शरीर भर मे फैली हुई हैं। ग्रथियॉ प्रत्यक्षतः दिखाई नही देतीं, परतु फोड़े-फुन्सी, चोट, प्लेग आदि रोगो में बढ जाती हैं और स्पष्टतः दिखाई देने लगती हैं। रोग मे इनके बढ जाने का कारण यह है कि जब लिम्फैटिक सिस्टम (Lymphatic System) मे किसी जगह रोग के कीटाणु पहुँच जाते हैं, तो वे श्वेत रक्त की टिकियो (Cospuscles) से युद्ध करते हैं जिससे उस जगह रक्त अधिक मात्रा में आ जाता है और वह

जगह सूज जाती है और लाल हो जाती है। यदि रक्त की टिकिये प्रबल होती हैं, तो वे रोग-कीटाणुओं को मार डालती हैं और सूजन तथा लाली कम हो जाती है। और यदि रोग-कीटाणु प्रबल होते हैं, तो लिम्फैटिक-ग्रंथि बढ जाती है और स्पष्टत· दिखाई देने लगती हैं, जिसे हम गिल्टी अथवा गिल्ट पड़ जाना कहते हैं। इस प्रकार लिम्फैटिक-ग्रथियाँ शारीरिक विकास मे आने वाले अवरोधों का निवारण करने मे बहुत सहायता देती हैं। नली हीन ग्रथियाँ मस्तिष्क, गले, गुरदे तथा अडकोष आदि मे पाई जाती हैं। इनसे भी एक प्रकार का रस निकलता है जिसे हारमोन (Harmone) कहते हैं चूकि नला-हीन ग्रथियों मे रस सचालन के लिए नलियाँ नही होती, अतः इनसे निष्क्रमित रस को रक्त-धारा अपने में मिला लेती है। नली हीन ग्रथियाँ मुख्यतः चुल्लिका या थाइराइट (Thyroid) पीयूप या पिट्यूटरी (Pitutary) उपवक्क या मुप्रा रीनल (Supra-renal) आदि प्रकार की होती हैं। थाइराइड ग्रथियाँ गले में सामने की तरफ वायु नली के दोना ओर पाई जाती हैं। अस्थि-वृद्धि तथा शरीर-पुष्टि का उनसे घनिष्ठ सबध है। यदि इनसे उचित प्रकार रस नही निकलता तो अनेकों रोग उत्पन्न हो जाते हैं और शारीरिक बढन रुक जाती है। इसके अतिरिक्त थाइराइड ग्रंथियो से निष्क्रमित रस के द्वारा मानव के विकासवाद दर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। इनसे निष्क्रमित रस में आयोडीन (Iodine) भी ठीक उसी अनुपात से होता है जितना समुद्र-जल मे होता है। इसी आधार पर हक्सले (Huxley) ने मानव का-विकास मच्छ से माना है और थाइराइड तथा पैरा थाइराइड (Parathyroid) ग्रथियों को मछली के पखों (Fins) का अवशेष चिन्ह बताया है। हक्सले के मत की पुष्टि दशावतार द्वारा भी होती है। कुछ विद्वानों का मत है कि दशावतार मानव-विकास के द्योतक हैं। दशावतारो मे से एक मच्छ अवतार भी है। अतः मच्छ भी मानव विकास की एक अवस्था हुई। पिट्यूटरी ग्रथियाँ मस्तिष्क केन्द्र मे स्थित हैं। ये सेम के बीज के समान होती हैं। इनके दो भाग होते हैं—बाह्य तथा आभ्यंतरिक। इनका शारीरिक बढन से

घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब बाह्य भाग से कम रस निकलता है, तो प्रायः बालको की बढ़न रुक जाती है और वे नाटे रह जाते हैं और जब अनावश्यक रूप से रस निकलता है, तो वे आवश्यकता से अधिक लम्बे हो जाते हैं और लम्बे बास की भाँति बेडौल और पूरे देव मालूम होते हैं। आभ्यंतरिक भाग का यौवन से घनिष्ठ संबध है। यदि इससे आवश्यकता से अधिक रस निकलता है, तो यौवन-सूचक चिह्न युवावस्था आने के पूर्व ही—यहाँ तक कि कभी-कभी तो ७–८ वर्ष की अवस्था में ही प्रकट होने लगते हैं और माता-पिता तथा अध्यापक उसे किसी कुप्रवृत्ति तथा कुसंग का फल समझ कर बालक को घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं, इसके विपरीत यदि रस कम मात्रा मे निष्क्रमित होता है, तो ये चिह्न यौवन-काल प्रारम्भ होने पर भी प्रकट नहीं होते और युवक की जाघे तथा कपोल मोटे हो जाते हैं एव जननेद्रिय-वृद्धि रुक जाती है तथा वह नपुंसक हो जाता है। सुप्रा रीनल ग्रथियों से भी उचित प्रकार रस निष्क्रमित न होने से बालको मे अनेकों रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इनसे कम रस निकलने से बालक मे सुस्ती रहती है और अधिक रस निकलने से उसकी पाचन-शक्ति बिगड जाती है।

किशोरावस्था के आते ही प्रकट होने वाले यौवन-सूचक शारीरिक चिह्न जैसे मुख, बगल आदि स्थानों मे बालों का आना, कोकिल-तुल्य कोमल कठ का मोटा भद्दा तथा कर्कश हो जाना, जननेन्द्रिय तथा वक्षस्थल का बढना, रजोदर्शन; आदि अडकोष अथवा बच्चे दानी में स्थित नली-हीन ग्रंथियों से निष्क्रमित रस के फल हैं। जिस प्रकार नाक, कान, जिह्वा, इत्यादि में ग्रंथियाँ स्थित हैं, उसी प्रकार अण्डकोषों मे भी कुछ ग्रथियाँ हैं। इन से दो प्रकार का स्राव होता है, एक बाह्य और दूसरा आतरिक। उक्त यौवन-सूचक चिह्नों का सम्बन्ध इस आभ्यतरिक स्राव से है। इस प्रकार ग्रथियों से निष्क्रमित उक्त स्राव के उचित प्रकार न होने से बच्चो में अनेकों रोग हो जाते हैं जिससे बच्चे दुर्बल हो जाते हैं और शीघ्र थक जाते

हैं। अतः कार्याधिक्य, निर्धनता, उचित भोजन न मिलने, स्थान के अधिक गर्म-ठंडा अथवा तर होने, इत्यादि के अतिरिक्त शारीरिक थकन का एक मुख्य कारण ग्रंथि-संस्थान में होने वाला स्राव भी है।

## मानसिक-वृद्धि

मानसिक वृद्धि की विशेषताएं—(१) यद्यपि मनुष्य तथा मनुष्येतर प्राणियों की शरीर–रचना तथा स्नायु-संस्थान मे कोई विशेष अंतर नहीं है, तथापि जन्म के समय पशु-पक्षियों के बच्चे मानव-शिशुओं से कही अधिक बुद्धिमान मालूम होते हैं: परतु कुछ समय पश्चात् बड़ा अतर पड जाता है, मानव-शिशु पशु-पक्षियों के बच्चों से बहुत कुछ आगे बढ जाता है। इसका कारण है मानसिक-वृद्धि तथा बुद्धि मे भेद। पशु-पक्षियों की मानसिक तथा बुद्धि-वृद्धि अल्प मात्रा मे होती है और शीघ्र ही समाप्त हो जाती है, परतु मनुष्यों की बुद्धि का विकास शनैः शनैः और अधिक समय तक होता है। यही कारण है कि पशु-पक्षियों के बच्चे मनुष्यों के बच्चों की अपेक्षा शीघ्र चलना-फिरना, खाना-पीना, इत्यादि सीख लेते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी एक प्राकृतिक नियम है कि जिन बच्चों का शिक्षा-काल ( Probation period ) जितना ही लम्बा होता है, उतना ही उनकी 'बुद्धि का विकास भी होता है। राम का कथन है कि The higher the position in the scale of intelligence of which the animal ultimately rises, the longer is the period of immaturity [1] अर्थात् जितनी ही बुद्धि तीव्र होती है, उतना ही शिक्षा-काल लम्बा होता है। चूँकि पशु-पक्षियों के बच्चों का शिक्षा काल मानव-शिशुओं की अपेक्षा शीघ्र समाप्त हो जाता है, अतः पशु-पक्षी मनुष्यों की अपेक्षा कम बुद्धिमान होते हैं। उक्त मानसिक कारणों के अतिरिक्त एक शारीरिक कारण भी है। जीव-विज्ञान-वेत्ताओं का मत है कि मानव-मस्तिष्क में स्थित कोषों ( Cells )

---

१. जेम्स रास: 'माडर्न एजुकेशनल साइकोलाजी': पृष्ठ १०२

से निष्क्रमित तंतुओं मे वृद्धि होने की शक्ति है, परतु मनुष्येतर प्राणियो में नही है। अतएव यद्यपि, जन्म के समय पशु-पक्षियो के मस्तिष्क मे मनुष्यो के मस्तिष्क की अपेक्षा अधिक तन्तु होते हैं, तथापि कुछ वर्ष उपरात अनुभव द्वारा मनुष्यों के मस्तिष्क में स्थित ततुओ की सख्या पशु-पक्षियों के मस्तिष्क मे रहने वाले ततुओं से कही अधिक हो जाती है यही कारण है कि मनुष्य पशु-पक्षियों से तीव्र बुद्धि होता है।

(२) बीमारी से उठने के पश्चात् प्राय:-कुछ दिन तक दिमाग खाली खाली-सा मालूम होता है। ऑख-कान आदि उचित प्रकार पूर्ववत् कार्य नही करते और थोडा-सा कार्य करने पर हो थकन आ जाती है। जन्माष्टमी, गणेश चौथ आदि का निर्जल व्रत रखने पर उस दिन मध्याह्न काल के पश्चात् कोई कठिन मानसिक कार्य नहीं हो पाता। इसके विपरीत शरीर स्वस्थ तथा नीरोग होने की दशा मे हमारा प्रत्येक कार्य में मन लगता है और हम डटकर पढाई--लिखाई आदि का मानसिक कार्य भी कर सकते हैं। अत: शारीरिक स्थिति का मानसिक दशा पर बहुत प्रभाव पडता है। वास्तव मे शारीरिक तथा मानसिक-वृद्धि अन्योन्याश्रित हैं जैसा कि रास का कथन है, 'The experience leaves behind it a modification of the mental structure . The engrams resulting from experience do not lie side by side, unrelated to oneanother, but adhere to form new wholes,[१] अर्थात् अनुभव के अनुसार मस्तिष्क की बनावट भी परिवर्तित हो जाती है। अनुभव के कारण होने वाले ज्ञान-तंतु पृथक्-पृथक् नही पडे रहते अपितु एक ततु-समूह बन जाते हैं। इसके विपरीत 'Mental structure actively determines experience and behaviour urging the individual to notice this rather than that in The environment, to feel in a characteristic way,

---

१ जेम्स रास; 'माडर्न एजुकेशनल साइकोलाजी, पृष्ठ ४८

and to do this rather than that,'' अर्थात् किसी मनुष्य को क्या देखना, सोचना तथा करना चाहिए इसका निर्णय उसकी मानसिक बनावट द्वारा होता है। साराश यह है कि शारीरिक वृद्धि का मानसिक वृद्धि पर और मानसिक वृद्धि का शारीरिक वृद्धि पर बहुत प्रभाव पडता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि शारीरिक तथा मानसिक वृद्धि दोनो एक साथ हो और एक ही गति तथा अनुपात से हों। कारण कि शरीर-विकास का सम्बन्ध अधिकाश जलवायु, व्यायाम तथा आहार से है और बुद्धि-विकास का वश, वातावरण, शिक्षा, समाज, सस्कृति आदि से है। यही कारण है कि बहुत से पहलवान शरीर मे तो तगडे होते हैं, परन्तु बुद्धि से हीन होते हैं और बहुत से मनुष्य देखने-भालने में तो बडे दुर्बल प्रतीत होते हैं, परन्तु बुद्धि मे बडे तेज होते हैं।

(३) शरीर मूर्त है और मन अमूर्त। अत: शरीर-वृद्धि फीते से नापी और तराजू मे तोली जा सकती है, परन्तु मानसिक वृद्धि के लिए ऐसा सम्भव नहीं है, तदपि विनेट ( Binet ) की कृपा से सन् १६११ ई० से बुद्धि परीक्षाओ द्वारा हम किसी भी मनुष्य की बुद्धि उसकी आयु के अनुसार नाप सकते हैं और बता सकते हैं कि उसकी बुद्धि उसकी आयु से कम है अथवा अधिक। बुद्धि वातावरण, शिक्षा, सस्कृति आदि कारणों से आयु से बहुत कुछ आगे-पीछे हो जाती है। उदाहरणार्थ यदि कोई बालक १५ वर्ष का है, तो यह आवश्यक नही है कि उसकी बुद्धि भी १५ वर्ष की ही हो, बुद्धि-परीक्षा द्वारा उसकी आयु १३ १४ वर्ष की अथवा १६-१७ वर्ष की भी हो सकती है।

(४) मानसिक विकास मे क्षति-पूर्ति का भी नियम है। प्राय: देखा गया है कि जिन मनुष्या मे कोई शारीरिक कमी होती है, वे बडे तीव्र बुद्धि होते हैं। उदाहरणार्थ हकले अत्यन्त बुद्धिमान्, अन्धे अच्छे सगीतज्ञ, काने बडे काइया और गूगे राजनीतिज्ञ अथवा महात्मा होते हैं।

---

१ जेम्स रास, माडर्न एजुकेशनल साइकोलाजी पृष्ठ ४८

यथा अन्धे सूरदास महाकवि थे. अन्धा ब्रेइल ( Braille ) अन्धो को पढाये जाने वाले उभरे हुए अक्षरों का आविष्कारक था, बहरा बेठोफेन विश्व-विख्यात संगीतज्ञ था, गूंगा डेमोस्थनीज प्रसिद्ध यूनानी राजनीतिज्ञ और गूगा मूसा प्रसिद्ध महात्मा थे। उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि शारीरिक क्षति की पूर्ति मानसिक विकास द्वारा होती है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी मानसिक क्षति की पूर्ति मानसिक विकास द्वारा भी होती है। यदि कोई इन्द्रिय किसी कारण से नष्ट अथवा दुर्बल होजाती है, तो उसकी पूर्ति अन्य किसी दूसरी इन्द्रिय के असाधारण विकास द्वारा हो जाती है। यथा महात्मा कबीरदास का निर्धनता तथा नीच जाति द्वारा उत्पादित हीनता की पूर्ति एक बडे महात्मा होकर करना, मानसिक-क्षति-पूर्ति का एक सुन्दर उदाहरण है।

मानसिक-विकास का सबध, मानसिक शक्तियों से और उनका ज्ञानेन्द्रिय मस्तिष्क-वातसस्थान आदि से है। इन शरीरावयवो की प्रधानता के अनुसार, हम मानसिक शक्तियो को निम्न, तथा उच्च दो कोटियों मे विभाजित कर सकते हैं। निम्न कोटि के अतर्गत चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धो, दृष्टि, श्रवण, घ्राण, स्वाद, स्पर्श आदि सावेदिक, अथवा चेतनोत्पादक शक्ति, तथा अ ग-सचालन, वाक्-शक्ति आदि, और उच्चकोटि के अन्तर्गत मस्तिष्क सम्बन्धी ध्यान, स्मरण कल्पना विवेचना, बुद्धि आदि शक्तिया हैं। घबराहट, भ्राति आदि का सम्बन्ध भी वात-सस्थान से ही है। यहा हम केवल आख, कान, वाक्-शक्ति आदि केवल कुछ ज्ञानेन्द्रियो तथा शक्तियो की ही विवेचना करेंगे।

---

५

## ( १ ) आँख तथा दृष्टि

दृष्टि—आख के ताल मे एक प्रकार की सयोजिका-शक्ति होती है, जिसके द्वारा ताल तथा दृष्टि-पटल के बीच की दूरी सदैव एक-सी रहने पर भी, हम ताल की मोटाई को घटा-बढाकर, अर्थात् उसका उभार कम-अधिक करके एक-सा ही देखते हैं। ताल के प्राकृतिक उभार की दशा मे हम लगभग २० फीट से अधिक दूर की वस्तुओ को भलीभाति देख सकते हैं, परन्तु इससे निकट की वस्तु को देखने के लिए रोम-पेशियों को सिकुड कर ताल को आगे को उभारना पड़ता है, और उन पर खिचाव पड़ता है। सयोजिका शक्ति का विकास शनैः-शनैः होता है। सभवतः जन्म के समय इस शक्ति का निकटतः अभाव-सा होता है यही कारण है कि ६–७ मास तक बच्चे की दृष्टि नहीं ठहरती, परन्तु इसके पश्चात् वह किसी वस्तुकी ओर कुछ देर तक देख सकता है। लगभग ५ वर्ष की आयु तक बच्चे की आँखे दूर की वस्तुएँ तो स्पष्टतः देख सकती हैं, परन्तु पास की वस्तुएँ उतनी अच्छी तरह नही देख सकती। ७ वर्ष की अवस्था तक दृष्टि परिपक्व होजाती है, और सयोजिका-शक्ति पूर्णतः विकसित होजाती है, और बच्चा दूर, तथा पास सब जगह की वस्तुएँ भलीभाँति देख सकता है। अतः दूसरी, तीसरी आदि छोटी कक्षाओं मे बच्चों से लिखने-पढने ( कापी आदि पर लिखने, और छोटे छापे की पुस्तक पढने ) तथा सीने-पिरोने, बुनने-काढने आदि का अधिक काम न लेना चाहिए। अपितु श्यामपट्ट का प्रयोग अधिक करना चाहिए, जिससे बच्चो को अधिक निकट से न देखना पडे। मेरी समझ से तो

यथा अन्धे सूरदास महाकवि थे. अन्धा ब्रेइल ( Braille ) अन्धों को पढ़ाये जाने वाले उभरे हुए अक्षरा का आविष्कारक था, बहरा बेटोफेन विश्व-विख्यात सगीतज्ञ था, गूंगा डेमोस्थनीज प्रसिद्ध यूनानी राजनीतिज्ञ और गूगा मूसा प्रसिद्ध महात्मा थे। उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि शारीरिक क्षति की पूर्ति मानसिक विकास द्वारा होती है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी मानसिक क्षति की पूर्ति मानसिक विकास द्वारा भी होती है। यदि कोई इन्द्रिय किसी कारण से नष्ट अथवा दुर्बल होजाती है, तो उसकी पूर्ति अन्य किसी दूसरी इन्द्रिय के असाधारण विकास द्वारा हो जाती है। यथा महात्मा कबीरदास का निर्धनता तथा नीच जाति द्वारा उत्पादित हीनता की पूर्ति एक बडे महात्मा होकर करना, मानसिक-क्षति-पूर्ति का एक सुन्दर उदाहरण है।

मानसिक-विकास का सबध, मानसिक शक्तियो से और उनका ज्ञानेन्द्रिय मस्तिष्क-वातसस्थान आदि से है। इन शरीरावयवो की प्रधानता के अनुसार, हम मानसिक शक्तियां को निम्न, तथा उच्च दो कोटियों मे विभाजित कर सकते है। निम्न कोटि के अतर्गत चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धो, दृष्टि, श्रवण, घ्राण, स्वाद, स्पर्श आदि सावेदिक, अथवा चेतनोत्पादक शक्ति, तथा अग-सचालन, वाक्-शक्ति आदि, और उच्चकोटि के अन्तर्गत मस्तिष्क सम्बन्धी ध्यान, स्मरण कल्पना विवेचना, बुद्धि आदि शक्तिया हैं। घबराहट, भ्राति आदि का सम्बन्ध भी वात-सस्थान से ही है। यहा हम केवल आख, कान, वाक्-शक्ति आदि केवल कुछ ज्ञानेन्द्रियो तथा शक्तियों की ही विवेचना करेगे।

---

५

# ( १ ) आँख तथा दृष्टि

दृष्टि—आख के ताल में एक प्रकार की सयोजिका-शक्ति होती है, जिसके द्वारा ताल तथा दृष्टि-पटल के बीच की दूरी सदैव एक-सी रहने पर भी, हम ताल की मोटाई को घटा-बढाकर, अर्थात् उसका उभार कम-अधिक करके एक-सा ही देखते हैं। ताल के प्राकृतिक उभार की दशा मे हम लगभग २० फीट से अधिक दूर की वस्तुओ को भलीभाति देख सकते हैं, परन्तु इससे निकट की वस्तु को देखने के लिए रोम-पेशियो को सिकुड कर ताल को आगे को उभारना पड़ता है, और उन पर खिचाव पड़ता है। सयोजिका शक्ति का विकास शनैः-शनैः होता है। सभवतः जन्म के समय इस शक्ति का निकटतः अभाव-सा होता है यही कारण है कि ६–७ मास तक बच्चे की दृष्टि नहीं ठहरती, परन्तु इसके पश्चात् वह किसी वस्तुकी ओर कुछ देर तक देख सकता है। लगभग ५ वर्ष की आयु तक बच्चे की आँखे दूर की वस्तुएँ तो स्पष्टत· देख सकती हैं, परन्तु पास की वस्तुएँ उतनी अच्छी तरह नही देख सकती। ७ वर्ष की अवस्था तक दृष्टि परिपक्व होजाती है, और सयोजिका-शक्ति पूर्णतः विकसित होजाती है, और बच्चा दूर, तथा पास सब जगह की वस्तुएँ भलीभाँति देख सकता है। अतः दूसरी, तीसरी आदि छोटी-कक्षाओं मे बच्चों से लिखने-पढने ( कापी आदि पर लिखने, और छोटे छापे की पुस्तक पढने ) तथा सीने-पिरोने बुनने-काढने आदि का अधिक काम न लेना चाहिए। अपितु श्यामपट्ट का प्रयोग अधिक करना चाहिए, जिससे बच्चो को अधिक निकट से न देखना पडे। मेरी समझ से तो

दूसरी कक्षा तक ही नही, अपितु तीसरी-चौथी कक्षा तक कापी के स्थान मे तख्ती का यथासभव प्रयोग कराना चाहिए, और शिक्षा आरभ करनेवाले बच्चो से तो कापी अथवा तख्ती के स्थान मे बालुका पर अगुलियो से, और श्यामापट्ट पर चाक अथवा खडिया से लिखवाना चाहिए। क्योकि छोटी अवस्था तक दृष्टि अथवा सयोजिका-शक्ति के अपरिपक्व होने के अतिरिक्त अगुलियो की अस्थियाँ, तथा मास-पेशियाँ भी अत्यत कोमल होती हैं, और बच्चे लेखनी भलीभाँति नही पकड सकते। यही कारण है कि छोटे बच्चे कापी पर बहुत भद्दा लिखते हैं। इसके अतिरिक्त माता-पिता को भी इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ५ वर्ष की आयु से पूर्व बच्चों से किसी प्रकार का बारीक काम न ले।

इगलेड मे ५ वर्ष से कम के बच्चो के लिये भी नर्सरी-स्कूल ( Nursery School ) हैं। उनकी देखा-देखी बहुत से अति उत्साही माता-पिता ३–४ वर्ष की अवस्था से ही बच्चो को वर्णमाला, गिनती आदि पढाना लिखाना आरभ कर देते हैं, किन्तु वे भूल करते हैं, और यह नही समझते कि इगलेड के नर्सरी स्कूलो का सा मनोवैज्ञानिक ढग भारतवर्ष मे प्रायः कही भी नही है। यही कारण है कि भारत मे शिक्षा-विभाग ने ५ वर्ष से कम के बच्चो के लिये शिक्षा अनिवार्य नही की है। यहाँ ऐसा करना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक, और उनकी स्वाभाविक बढन मे अवरोधक है।

**अक्षु तथा दृष्टि-रोग—( अ ) अक्षु-रोग—( १ ) आँख दुखना:—** जब नेत्राच्छादिनी झिल्ली मे रहने वाली खून की नसे, गर्मी-सर्दी, आँख की कमजोरी, आँख पर अनावश्यक भार पडने, धुएँ में अधिक रहने आदि किसी कारण से फूल जाती हैं, तो आँखे लाल हो जाती हैं, और कभी-कभी सूज भी जाती हैं। यह एक संक्रामक रोग है। प्रायः बच्चे रुमाल से आँखे पोछा करते है, जिससे इसके कीटाणु शीघ्र अन्य बच्चो तक पहुंच जाते हैं। अध्यापक का यह कर्तव्य है कि आँख दुखते बच्चो

को अन्य बच्चों से अलग रखे, और जब तक आँख पूर्णतः अच्छी न हो जाय रोगी को स्कूल न आने दे।

(२) **गुहेरी अथवा बिलनी**-पलकों के बाहरी सिरों पर भीतर की ओर एक प्रकार की छोटी-छोटी ग्रथिया होती हैं, जिन से एक प्रकार का द्रव पदार्थ निकलता है। जब किसी कारणवश किसी ग्रथि से यह द्रव निकलना बद हो जाता है, तो वह ग्रथि सूज जाती है और गुहेरी बन जाती है। आँख को साफ रखने के लिए कभी-कभी त्रिफले से धो देना अच्छा है।

(**आ**) **दृष्टि रोग**-(१) **निकट दृष्टि**-जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि आख दूर की वस्तुओं को देखने के लिए बनाई गई है। २० फीट से अधिक दूर की वस्तु को देखने मे रोम-पेशियों पर किसी प्रकार का खिंचाव, अथवा जोर नही पड़ता, परन्तु इससे जितना ही अधिक निकट की वस्तु देखनी पडती है, रोम पेशियो को उतना ही अधिक सिकुड़ना पडता है, और उन पर उतना ही अधिक खिंचाव पडता है। निकटत १ फीट अर्थात् २५ सैंटीमीटर, या १० इञ्च की दूरी से कम से पढने-लिखने, बुनने-काढने, सीने-पिरोने, छापा अत्यधिक छोटा होने, अथवा उचित रोशनी न होने की दशा में रोम-पेशियो को बहुत अधिक सिकुडना पडता है। कुछ दिनो बाद नेत्रगोलक की लम्बाई, अथवा ताल का उभार अनावश्यक रूप से बढ जाता है, और रोम-पेशियाँ इतनी ढीली पड़ जाती हैं कि उनमे सिकुडने की शक्ति तो कुछ बढ़ जाती है, परन्तु फैलने की शक्ति कम हो जाती है। जिसका फल यह होता है कि, सयोजिका-शक्ति बिगड जाती है और पास की वस्तु तो ४-५ इञ्च से कम की दूरी से भी दिखाई पडने लगती है, जो कि आख की साधारण अवस्था मे असभव है, परन्तु दूर की वस्तु धुँधली दिखाई देती है। कारण कि दूर की वस्तु का प्रतिबिम्ब ठीक प्रकार केंद्रीभूत नही हो पाता, और दृष्टि-पटल पर पहुँचने के पूर्व ही पड़ जाता है, अर्थात् उससे कुछ

आगे पड़ जाता है। क्योंकि इसमे यह दोष है कि केवल निकट की ही वस्तु दिखाई देती है, दूर की नही, अतः इसे निकट-दृष्टि-दोष कहते हैं। छोटी कक्षाओं मे लिखते-पढने समय आँखो को उचित स्थान पर न रखने, और अध्यापको के उस ओर ध्यान न देने के कारण, प्राय ८ वीं, ९ वीं कक्षा के विद्यार्थियों मे समीप-दृष्टि-दोष होजाता है। इसमे नतोदर ताल का चश्मा लगाना चाहिए।

(२) **दूर-दृष्टि-दोष**—यह रोग प्रायः किसी-किसी बालक मे जन्म से ही होता है, परन्तु चूँकि उसका पता नही चलता, वह धीरे-धीरे बढ जाता है। इसके अतिरिक्त देखने मे आँख को उचित स्थिति, अथवा स्थान मे न रखने आदि भूलो से भी होजाता है, अथवा और अधिक बढ़ जाता है। कुछ लोगो का, वश-परम्परा आदि कारणो से, जन्म से ही नेत्र-गोलक छोटा, और रोम-पेशियाँ कुछ ढीली होती हैं, और कुछ लोगों की आँखो की यह दशा किसी वस्तु को आवश्यकता से अधिक दूरी से देखने, १ फीट से अधिक दूरी पर पुस्तक रखने, तथा लेट कर पढने-लिखने आदि से हो जाती है। आवश्यकता से अधिक दूरी से पढने से रोम-पेशियो को अधिक फैलना पड़ता है; जिसका फल यह होता है कि वे ढीली पड़ जाती हैं, और ताल का उभार कम अथवा नेत्र-गोलक छोटा होजाता है। जिस प्रकार पतली रबर का गेटिस आदि अधिक बार-बार खींचने से लम्बाई मे कुछ बढ़ जाता है, और फिर सिकुड कर अपनी मूल अवस्था तक नही पहुच सकता, ठीक उसी प्रकार अधिक समय तक बार-बार आवश्यकता से अधिक दूर की वस्तु को देखने मे, रोम-पेशियों के अत्यधिक फैलाने के कारण उनमे फैलने की शक्ति तो रहती है, परन्तु सिकुड़ने की शक्ति पूर्ववत् नही रहती। अतः निकट की वस्तु का प्रतिबिंब भली भाँति केंद्रीभूत नही हो पाता, और वह केंद्रीभूत होने के पूर्व ही दृष्टि पटल को पार कर जाता है, अर्थात् वह दृष्टि-पटल के कुछ पीछे पड़ता है, जिससे वह वस्तु धुँधली दिखाई देती है। हाँ, दूर को

वस्तु का प्रतिबिम्ब ठीक दृष्टि-पटल पर पडता है, अतः वह स्पष्ट दिखाई देती है। क्योंकि इसमे यह दोष है कि केवल दूर की वस्तु ही स्पष्ट दिखाई देती है, पास की नहीं, अतः इसे दूर-दृष्टि-दोष कहते हैं। यह दोष लडकों तथा युवको मे अधिक पाया जाता है। इसमे उन्नतोदर ताल का चश्मा लगाना चाहिये।

( ३ ) **वृद्धावस्था की निकट अथवा दूर-दृष्टि** ( Presbyopia ):—अवस्था अधिक होने पर प्रायः ४०-४५ वष की आयु मे आँखे कमजोर हो जाती हैं, और उनकी सयोजिका-शक्ति कम हो जाती है, जिससे वे मनुष्य, जो युवावस्था मे निकट-दृष्टीय होते हैं, इस अवस्था मे धीरे-धीरे दूर-दृष्टीय होने लगते हैं, और वे जो युवावस्था मे दूर-दृष्टीय होते हैं, इस अवस्था मे निकट-दृष्टीय होने लगते हैं। अतः इस समय उनकी आँखे साधारण अवस्था मे आ जाती हैं, परन्तु वे लोग जिनकी आँखे युवावस्था में ठीक होती हैं, उनकी सयोजिका-शक्ति सीमित होजाती है और उन्हे चश्मा लगाने की आवश्यकता पडने लगती है।

( ४ ) **दृष्टि-वैषम्य**.—कुछ बच्चे खडी लकीरे देख सकते हैं, परंतु पड़ी नही देख सकते, अथवा कागज या कपडे पर का चारखाना, जामेट्री की शक्ले, समानान्तर रेखाएँ आदि भली भाँति नही देख सकते। ऐसे बच्चो को प्रायः समान रेखाओं मे से कोई एक काली, अथवा समानान्तर रेखाएँ दौड़कर एक दूसरे मे मिलती हुई प्रतीत होती हैं और कुछ देर तक देखने से शिर, अथवा आँखो मे दर्द होने लगता है। इसे दृष्टि-वैषम्य-दोष कहते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि यह दोष दोनो आँखो मे हो, अथवा दोनो आँखो मे एक-सा ही हो। इस दोष का कारण कनिका अथवा प्रतिबिम्ब को केंद्रीभूत करने वाले अन्य माध्यमो के घुमाव का समरूप मे न होना है। इससे प्रतिबिम्ब के विभिन्न-भागों को एक साथ केंद्रीभूत करने में बडी कठिनाई ही नही होती अपितु ऐसा करना असभव हो जाता है। इसका कारण लिखते-पढते समय शिर को नीचा करके

एक ओर झुका देना, लेट कर लिखना पढ़ना आदि है। इस ओर अध्यापकों को विशेष ध्यान देना चाहिए। इसमें पेर्चीदा ताल का चश्मा लगाना चाहिए।

(५) **प्रकाश का अंधापन**—प्रायः देखा जाता है कि जब हम थोड़ी देर तक तीव्र विद्युत् प्रकाश में कार्य करने, अथवा धूप में बाहर बैठने अथवा चलने पर छाया, अथवा कमरे में आते हैं, तो सहसा थोड़ी देर कुछ दिखाई नहीं देता, अथवा धुंधला दिखाई देता है। इतना ही नहीं अपितु बिजली की तेज रोशनी में काम करने वाले, लैम्प आदि के मंद-प्रकाश में, पढ़-लिख तक नहीं सकते। इसका कारण यह है कि तेज रोशनी से मंद रोशनी में आने पर प्रकाश-ग्रहणकारी छड़ों, तथा सूचियों पर अधिक जोर पड़ता है, और शीघ्र ही छड़ थक कर अचेत हो जाती हैं, और सूचियों को कुछ दिखाई नहीं देता। यही दशा किसी चमकीली वस्तु को कुछ समय तक घूर कर एकटक देखते रहने के बाद निगाह फेरने के समय भी होती है। अधिक समय तक तीव्र-प्रकाश में काम करते-करते दृष्टि-पटल सुथरा हो जाता है और छड़ों तथा सूचियों की मंद प्रकाश में देखने की शक्ति ही नष्ट हो जाती है। अतः माता पिता को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे अत्यधिक तीव्र विद्युत् प्रकाश में, अथवा लगातार तेज लेम्प आँख के सामने रखकर न पढ़े-लिखें, अन्यथा कुछ दिनों बाद वे लैम्प आदि की साधारण रोशनी में पढ़ने-लिखने योग्य भी न रहेंगे।

(६) **रंग का अंधापन**—प्रायः ऐसा तो कभी नहीं होता कि कोई रंग ही न दिखाई दे, परन्तु कभी-कभी किसी-किसी बच्चे को दो एक रंग नहीं दिखाई देते हैं। कुछ बच्चों को लाल तथा नीले अथवा हरे, और कुछ को बैंजनी तथा पीले रंग एक से दिखाई देते हैं। यह रोग लड़कियों की अपेक्षा लड़कों को अधिक होता है। दृष्टि-पटल में प्रायः लाल, हरे तथा बैंजनी वर्ण ग्रहणकारी कोष होते हैं। अन्य वर्ण इनके सम्मिश्रण से

बन जाते हैं। जब किसी बच्चे की आँख मे किसी वर्ण विशेष की छड़ों, तथा सूचियों का अभाव होता है, तो वह उस रग को नहीं देख सकता। रग के अधे को प्रायः नीले तथा लाल रग, भूरे, अथवा हल्के हरे रग से कम या अधिक-गहरे, और हल्के हरे तथा पीले-रग श्वेत दिखाई देते हैं। यदि कोई बालक रग सबधी प्रश्नों का उत्तर ठीक प्रकार न दे सके, तो अध्यापक को विभिन्न रग के कागजो द्वारा देखना चाहिए कि वह बच्चा रंग का अधा तो नहीं है, और यदि है तो किस रग का। रग का अधापन वशानुगत कारणो से होने के कारण प्राय. असाध्य होता है, अत: अध्यापक को चाहिए कि रग के अधे बच्चे को उचित सुविधा दे, परन्तु कभी-कभी यह रोग तम्बाकू. तथा मद्य की अति से भी हो जाता है, अथवा बढ जाता है। अतः अध्यापक तथा माता-पिता को बच्चो को सिगरेट-बीड़ी पीने की आदत को छुड़ाने का यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिए।

(७) दृष्टि संबंधी आवश्यक बातें.—जब आँखें कमजोर हो जाती हैं, तो प्रायः थोड़ा-सा लिखने-पढने, बुनने-काढने अथवा सीने-पिराने पर ही आँखे थक जाती हैं, सिर अथवा आँखो मे दर्द होने, अथवा रहने लगता है, पलक भारी लगने लगते हैं, आँखे लाल हो जाती हैं, सूज जाती हैं, उनमे पानी निकलने लगता है, उनमे ढीड अधिक आती हैं, और प्रायः धुँधला दिखाई देता है, और लिखते-पढने, अथवा अन्य बारीक काम करते समय प्रायः माथे, तथा भौहों मे सिकुडने पड जाती हैं। ऐसे बच्चे प्राय. पुस्तक आँखों के बहुत पास रखते हैं, अथवा पीछे से बोर्ड पर दिखाई न देने की शिकायत किया करते हैं। आँखों के अत्यत पास अथवा दूर रखना, तेज रोशनी मे काम करना, और उसे प्राय आँख के सामने रखना, लेटकर पढ़ना आदि के अतिरिक्त सिगरेट पीना, कसी टाई बाँधना, निवास स्थान मे अधिक सील, घुटन, गर्मी, सर्दी, अँधेरा आदि होना, भी हैं। शिक्षकों तथा अभिभावकों को

यह देखना चाहिए कि बच्चे पढ़ते समय पुस्तक को, लिखते समय कापी को, सीते-पिरोते, बुनते-काढ़ते समय वस्त्र आदि को, आँखो से एक फीट से कम अथवा अधिक दूरी पर न रखे, चलती सवारी मे न पढ़ें, पुस्तकों का छापा अत्यधिक छोटा न हो—७ वर्ष से अधिक की अवस्था के बच्चो के लिए प्रायः अक्षर ७/१०० अथवा ३/५० इंच से अधिक छोटे न होने चाहिएँ, परंतु इससे कम आयु के बच्चों के लिए १/५ अथवा ३/२० इंच से कम मोटे छापे की पुस्तक न होनी चाहिये । पढ़ते समय डेस्क पर एक ओर कमर झुकाकर न पढ़े, लिखते समय कमर तथा कापी एक ओर को टेढ़ी करके, शिर एक ओर को, अथवा अधिक नीचे को झुकाकर न लिखे। उनके पढ़ने-लिखने के कमरे मे उचित गर्मी, वायु, रोशनी आदि होनी चाहिए। पढ़ते-लिखते समय रोशनी अधिक तेज अथवा मंद न होनी चाहिए, व चारपाई पर लेट कर न पढ़े । किसी वस्तु की ओर अधिक समय तक एकटक न देखते रहे, बीच-बीच मे पलक मारते रहें, इससे खारी-द्रव-पदार्थ निकलता रहता है, और नेत्राच्छादिनी-झिल्ली तर तथा साफ रहती है. जिससे आँख थकने नही पाती। इसके अतिरिक्त अध्यापकों को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि कही बच्चे किसी कठिन शब्द आदि को ध्यान पूर्वक देखने के बहाने आँख के पास लाकर समझने का प्रयत्न तो नहीं करते। इस आदत के पड़ने से पुस्तक आँख के पास रखकर पढ़ने की आदत पड़ जाने का डर है। यदि इतना ध्यान रखने पर भी आँखे कमजोर हो जायँ, तो उचित शक्ति के चश्मे का शीघ्र प्रबंध कर देना चाहिए, अन्यथा रोग और अधिक बढ़ जाने की संभावना है। चश्मे से संयोजन ठीक प्रकार हो जाता है, प्रतिबिंब ठीक दृष्टि-पटल पर केंद्रीभूत होने लगता है।

---

६

# श्रवण-शक्ति

**कान**—कान के तीन भाग हैं—बाह्य, मध्य तथा आंतरिक।

**बाह्य कर्ण**—यह बाहर की ओर निकला रहता है और छोटा-बड़ा, खड़ा-पड़ा कई प्रकार का होता है। यह स्तन-धारी प्राणियों के तो होता है, परन्तु साँप, छछूँदर, सूस, चिड़िया इत्यादि के नही होता। यह एक प्रकार का ध्वनिग्राहक यन्त्र है और ध्वनि-लहरो को एकत्रित करके कर्ण-द्वारा भीतर भेजता है। इस नली के भीतरी मुख पर एक पतली झिल्ली होती है जिसे कान का पर्दा कहते हैं।

**मध्य कर्ण**—यह कान के पर्दे के पीछे कनपटी के नीचे एक छोटी-सी हवा की कोठरी है।

**आंतरिक कर्ण**—मध्य कर्ण के पीछे एक छोटी-सी थैली होती है। इसके पिछले भाग मे वृत्त के आकार की तीन नलियाँ होती हैं। जिनमे एक प्रकार का श्वेत रग का रस भरा रहता है पीछे की ओर बारीक बालों के गुच्छे होते हैं जिनके द्वारा हम ध्वनि सुन तथा पहचान सकते हैं।

**सुनना**—ध्वनि लहर से कान का पर्दा, मध्यकर्ण की तीनों नलियाँ, तरल पदार्थ, आभ्यतरिक बालों के गुच्छे आदि सब कम्पित हो जाते हैं और चेतना श्रवण-स्नायु द्वारा मस्तिष्क में स्थित श्रवणकेंद्र तक पहुँच जाती है और उस ध्वनि का ज्ञान होता है। कान के पर्दे मे कम से कम १६ और अधिक से अधिक ५०,००० कम्पन हो सकते हैं। इससे कम अथवा अधिक लहरें उत्पन्न करने वाली लहर का प्रभाव कान के पर्दे पर उचित

प्रकार नहीं होता। अतः बालकों से न तो इतना धीरे से ही बोलना चाहिए कि सुनाई भी न दे और न इतना जोर से ही बोलना चाहिए कि कान के पर्दे पर चोट पहुचे। बदूक की गोली अथवा आतिशबाजी या तोप का गोला छूटने से कान के पर्दे पर इतनी जोर का धमाका पहुचता है कि कान गुगिया जाते हैं। इसी कारण ऐसे अवसर पर प्रायः लोग कानो में अगुली दे लेते हैं। अधिक तेज आवाज से कान का पर्दा फट जाने का डर रहता है। अतः छोटे बच्चो को 'कानाबाती कुर' नामक खेल न खेलने देना चाहिए। इसमे कभी-कभी बच्चे एक दूसरे के कान में 'कानाबाती कुर' करने के बहाने इतनी जोर से किल्ली मारते है कि कान का पर्दा फट जाता है।

सुनने की शक्ति सब जीवो में समान नही होती। बाह्य कर्ण जितना ही बड़ा तथा हिलने डुलने वाला होता है, यह शक्ति उतनी ही अधिक होती है। उदाहरणार्थ कुत्ता बिल्ली, हरिण, खरगोश, गाय, बैल आदि पशु ध्वनि की ओर मनुष्यों की अपेक्षा आसानी से कान खड़े कर सकते हैं, अतः सुनने की शक्ति उक्त प्रकार के पशुओं मे मनुष्यों की अपेक्षा अधिक होती है। यही कारण है कि वे तनिक-सी आहट पाते ही चौकन्ने हो जाते हैं।

सुनने की शक्ति लगभग ७ वर्ष तक पूर्णतः विकसित हो जाती है। आवाज पर अधिकार न होने और गाने तथा बोलने म अशुद्धि हो जाने का कारण वाक्-शक्ति की अपूर्णता तथा श्रवण-शिक्षा का अभाव है, श्रवण-शक्ति की अपूर्णता नहीं। प्राइमरी स्टेज अर्थात् छोटी कक्षाओं मे बच्चों को गद्य की अपेक्षा पद्य और पद्य की अपेक्षा राग (सगीत) अधिक रुचिकर प्रतीत होता है। अतः शिक्षको को चाहिए कि वे इस समय बच्चो को सुन्दर-सुन्दर पद अथवा कविताएँ सिखाएँ। ३ री ४ थी कक्षाओं में मौखिक कविता-पाठ ( Recitation) द्वारा और ५ वीं ६ ठी कक्षाओं में कविताएँ कठ कराकर अताक्षरी जैसे खेल खिला कर बच्चा मे राग के प्रति रुचि

उत्पन्न कराई जा सकती है। ११-१२ वर्ष का अवस्था मे बालकों मे किसी आवाज पर ध्यान देने की शक्ति पर्याप्त मात्रा मे उन्नत हो जाती है और वे शुष्क सगीत को समझने लगते हैं। इस समय उनमे सुर, लय, राग, ध्वनि, उच्चारण आदि के सूक्ष्म भेदों को समझने की शक्ति भी आने लगती है। अतः यदि इस समय बालको को भाषण-ध्वनियो की शिक्षा दी जाय, तो उनका उच्चारण ( Pronunciation ) बहुत कुछ सुधर सकता है।

**श्रवण-रोग**—कभी-कभी कान मे सर्दी आदि लग जाने से पीत द्रव्य अधिक मात्रा मे बनने लगता है, जिससे बाह्य-कर्ण-नली बद हो जाती है और ध्वनि-लहर कर्ण-पटल तक नहीं पहुँच पाती, जिससे हम ऊँचा सुनने लगते हैं। ऐसा कभी कभी स्नान आदि के समय कान मे पानी चले जाने से भी हो जाता है। कभी-कभी कान मे फुसी, तेज जुकाम आदि के कारण भी कठ-कर्ण नली के बन्द हो जाने से मध्य कान की कोठरी तक कठ से हवा नही जाने पाती और ध्वनि-लहर मध्य-कर्ण की दीवाल तथा उसके आगे नहीं पहुच पाती। इसके अतिरिक्त प्राय. बच्चे पेसिल की नोक, दियासलाई अथवा सींक आदि से कान कुरेदा करते है, जिससे सींक आदि का टुकडा टूट कर अदर रह जाने के अतिरिक्त कर्ण-पटल के फट जाने का डर भी रहता है। अतः कान बहने, जुकाम हो जाने, कान मे बाह्य पदार्थ चले जाने इत्यादि का माता-पिता तथा शिक्षकों को विशेष ध्यान रखना चाहिए। यदि बच्चा गाने से जी चुरावे, सगीत से भागे और उसे समस्त वातावरण शुष्क तथा नीरस लगे, परतु अपना नाम शीघ्रता से सुन ले, तो समझना चाहिए कि उसके कान मे अवश्य कुछ दोष है। इसके अतिरिक्त प्राय. अध्यापक बच्चों के कान उमेठा करते हैं तथा माता पिता लडकियो को गहने पहनने के निमित्त उनके कान छिदवाया करते हैं। जिससे कभी-कभी बालको के कान घायल होकर पक जाते हैं। कान सुनने के लिए हैं, खींचने, उमेठने अथवा छेदने के लिए नहीं।

---

## ७

# वाक्-शक्ति

वाक् शक्ति का सम्बध भाषा तथा भाषण से है, अतः यहा हम बच्चा की भाषा तथा भाषण-विकास की विस्तृत व्याख्या करेंगे।

**भाषा तथा भाषण**—जब हमारा किसी वस्तु विशेष से सम्पर्क होता है तो एक लहर-सी उत्पन्न होती है जो बाह्य इन्द्रियों से टकराती है जिससे उनमें एक प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न होती है, जो अतर्मुखी स्नायुओं द्वारा मस्तिष्क मे पहुॅचती है, जहॉ विचार उत्पन्न होता है, जो बर्हिमुखी स्नायुओ द्वारा शब्दोत्पादक तथा स्वरोत्पादक स्नायु-केन्द्रो मे होता हुआ वाग्मंच मे आता है और मुख द्वारा व्यक्त ध्वनियो के रूप मे निर्गत होता है। यह सार्थक व्यक्त ध्वनि-सकेत ही भाषा, और मनुष्यो द्वारा इनका सप्रयोजन व्यवहार करना अर्थात् बोलना मात्र ही भाषण है। अत' नवजात शिशु की सहज तथा स्वाभाविक ध्वनियों को भाषण नही कह सकते, क्यो कि वह सप्रयोजन नहीं होती। इस प्रकार भाषण से ही भाषा की उन्नति होती है। यदि भाषा कार्य है तो भाषण क्रिया, यदि भाषा नित्य है तो भाषण क्षणिक, यदि भाषा स्थायी है तो भाषण परिवर्तन-शील, यदि भाषा विद्या है तो भाषण कला, यदि भाषा का चरम अवयव शब्द है तो भाषण का वाक्य। एक उदाहरण से यह विषय स्पष्ट हो जायगा। कल्पना करो कि एक मनुष्य कहता है, 'बच्चो! सर्प है-' इन शब्दों से वायु मे एक प्रकार का कम्पन हुआ जिससे एक लहर उत्पन्न हुई जो कर्णेन्द्रिय पर टकराई जिससे वहा एक सवेदन उत्पन्न हुआ, जो अतर्मुखी स्नायुओ द्वारा मस्तिष्क मे गया, जहॉ यह विचार आया कि पूछा जाय कि

'कहा है ?' । यह बहिर्मुखी स्नायुओं द्वारा शब्दोत्पादक स्नायु-केन्द्र में होता हुआ वाग्मच मे आया और मुख द्वारा व्यक्त ध्वनि सकेतो के रूप मे प्रकट हुआ । यह शब्द अथवा वाक्य 'कहाँ है ?' ही भाषा और इनका व्यवहार ही भाषण है । यदि दूसरा मनुष्य बहरा, गूगा अथवा एकान्तवासी जगली होता, तो भाषा तथा भाषण का प्रयोग न कर पाता ।

**भाषा प्राकृतिक है अथवा अर्जित ?**—भाषा का पद केवल मनुष्यो की भाषा को ही प्राप्त है पशु-पक्षियो की भाषा को नहीं । यह मनुष्यो को ईश्वर की देन विशेष है परन्तु इसका यह अर्थ नही है कि भाषा प्राकृतिक है और इस पर मनुष्य जाति का जन्म सिद्ध अधिकार है । यदि ऐसा होता तो मनुष्य-समाज से पृथक् रहने वाला जगली मनुष्य भी प्राकृतिक भाषा सीख जाता, सारे ससार के मनुष्य एक ही भाषा बोलते, तथा बच्चा भिन्न वातावरण अथवा समाज मे रहने पर भी दूसरी भाषा न सीख पाता । परन्तु ऐसा नहीं है, 'राबिन्सन' क्रूसो का 'फ्राइडे' प्रारम्भ मे कोई भाषा नही बोलता था, ससार मे चीनी जर्मन इत्यादि अनेक भाषाये बोली जाती हैं तथा एक भारतीय शिशु अग्रेज धाया द्वारा परिपोषित होने पर अग्रेजी सीखता है, हिन्दी नही । हम किसी भी देश अथवा जाति की भाषा पूर्वजों के अनुकरण मात्र से ही सीख सकते हैं । अतः भाषा प्राकृतिक नही अपितु अर्जित सपत्ति है, परन्तु मनुष्य उसका अर्जन कर सकता है उत्पादन नही । भाषण के अतिरिक्त भाषा का कोई भी अग प्राकृतिक नही है । भाषण का बीज प्रत्येक नवजात शिशु की सहज और स्वाभाविक ध्वनियों में पाया जाता है ।

**भाषा तथा भाषण की आदि उत्पत्ति**—क्योंकि भाषण प्राकृतिक तथा भाषा से अधिक प्राचीन है अत. भाषा की उत्पत्ति की ज्ञान-प्राप्ति के पूर्व भाषण की उत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक है। भाषण का प्रारम्भिक स्वरूप अर्थात् सहज और स्वाभाविक ध्वनियाँ प्रकट करना तो प्रत्येक मनुष्य में जन्म से ही रहता है । रोना-किलियाना, प्रला-

पना, गूँ-गूँ करना तथा किलकारना आदि तो प्रत्येक अबोध शिशु भी कर लेता है। इस प्रकार भाषण क्रिया का आदि स्वरूप, भाषा का बीज तो मनुष्यों मे सहज तथा स्वाभाविक ध्वनियों के रूप मे आदिम काल से ही वर्तमान था। अब प्रश्न यह है कि उसका विकास किस प्रकार हुआ और उसे भाषण का रूप तथा द कब और कैसे प्राप्त हुआ ?

यद्यपि हम्बोल्ट के मत से भाषा तथा भाषण की उत्पत्ति का निश्चित रूप से पता लगाना असम्भव है तथापि बच्चों की भाषा तथा भाषण की उत्पत्ति एव विकास का अध्ययन करने से भाषण तथा भाषा के विकास पर कुछ प्रकाश पड़ता है। जीव-विज्ञान के ज्ञाताओ का मत है कि मानव जाति का विकास एक व्यक्ति के विकास की भाँति ही हुआ है। जिस प्रकार अबोध शिशु स्वान्तः सुखाय कुछ सहज और स्वाभाविक ध्वनिया निकालता है और भूख-प्यास, दुख-दर्द आदि के लिए रोता तथा किल्लियाता है उसी प्रकार प्रारम्भ मे आदि मानव जाति कुछ सहज और स्वाभाविक ध्वनियाँ करती रही होगी।

जब शिशु तीन-चार मास का हो जाता है तो मस्त होकर कूँ-कूँ, गूँ-गूँ, आदि ध्वनियाँ निकालने तथा किलकारियाँ भरने लगता है, उसी प्रकार आदिम मनुष्य भी स्वातः सुखाय गुन-गुनाया करते होंगे। मनुष्य सामाजिक प्राणी है वह साथी बनाना और उनसे परस्पर विचार विनिमय करना चाहता है, अतः केवल स्वान्तः सुखाय सहज और स्वाभाविक ध्वनियों से ही काम नही चल सकता।

जब बच्चा पाँच-छः मास का हो जाता है तो खिलौने आदि वस्तुओ को देखकर उनकी ओर लपकने लगता है और हाथ पैर से इशारे करने लगता है। इसी प्रकार आदिम मानव जाति भी इशारों द्वारा काम चलाती रही होगी।

जब बच्चा आठ नौ मास का होता है तो वह बा-बा मा-मा, इत्यादि ध्वनियाँ अकारण ही निकालने लगता है, परन्तु माता-पिता

उनको अपने लिए प्रयुक्त समझ कर उत्तर दे देते हैं और बच्चे से बोलने लगते हैं। धीरे-धीरे बच्चा उन ध्वनियों को माता-पिता के लिए प्रयोग करने लगता है। इस प्रकार ध्वनियों का अर्थ से सम्बन्ध हो जाता है और ये ध्वनि सार्थक होकर संकेत बन जाती हैं। उसी प्रकार पा-पा का पिता अथवा पानी से, हप्पा का खानी-पीनी वस्तु से, चाचा का चचा से, बुआ का किसी स्त्री से सम्बन्ध हो जाता है। भाषा तथा भाषण का यहीं से प्रारम्भ होता है। चाचा, बुआ, बाबा, मामा, पापा आदि ध्वनि-संकेत ही भाषा और उनका व्यवहार करना भाषण है। इस प्रकार बच्चे की भाषा और प्रारम्भ समाज तथा आकस्मिक संसर्ग द्वारा होता है। मानव-समाज ने भी अधिक संसर्ग में आने वाले व्यक्तियों तथा वस्तुओं को सहज ध्वनियों से अकस्मात् संबंधित कर लिया होगा।

जब बच्चा डेढ दो वर्ष का हो जाता है तो वह म्याऊ, कूं-कूं, मौं-मौं, चूँ चूँ, खों-खों, काक, घुग्घू आदि अनुकरण-मूलक और अहो हाहा, ओहो, आदि विस्मयादिबोधक शब्द तो सहज ही बना लेता है और कुत्ता, बिल्ली, घोडा, बन्दर, भाई, बीबी, आदि शब्दों का ज्ञान समाज द्वारा प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार बच्चों को पुराने तथा उपस्थित संसर्गों अर्थात् विकसित भाषा का अर्जन करना पड़ता है और उसको सिखाने वाले मनुष्य भी पहले से ही विद्यमान रहते हैं। परन्तु आदिम मानव-जाति को यह सुविधा न थी, उसके सामने न तो संसर्ग ही उपस्थित थे और न उनके सिखाने वाले मनुष्य ही। अतः प्रश्न यह है कि उन्होंने सार्थक शब्दों की उत्पत्ति कैसे की और उनका वर्तमान अर्थों से संबंध कैसे हुआ? संभव है कुछ अनुकरण-मूलक तथा विस्मयादि बोधक शब्द अनायास ही बन गए हों। परन्तु शेष शब्द-कोष का उद्भव किस प्रकार हुआ? इसका निश्चित रूपसे निर्णय करना तो असंभव है, परन्तु अनेक विद्वानों ने भिन्न भिन्न मतों तथा सिद्धान्तों द्वारा निकटतया निर्णय करने का प्रयत्न किया है, जिनका वर्णन आगे किया जायगा।

**भाषा तथा भाषण का विकास**—जब बच्चा लगभग दो वर्ष का हो जाता है, तो वह कुत्ते, बिल्ली, बन्दर, माँ, बाप आदि को देखकर कुत्ता, बिल्ली, बन्दर, अम्मा, बाबू आदि कहने लगता है, परन्तु इसके माने यह नहीं है कि वह पहले शब्द सीखता है। वह सोचता तो वाक्य मे ही है, परन्तु अभिव्यजना-शक्ति निर्बल होने के कारण अपने विचारों को वाक्यों मे प्रकट नहीं कर पाता। उसका अभिप्राय यही होता है कि देखो बिल्ली आई, अम्मा आओ, बाबू आए इत्यादि, इसी प्रकार 'मामी' से पानी लाओ, 'दूद' से दूध लाओ 'दादी' से रोटी ले लो, 'बज्जी' से बाजार चलो, घर से 'घर' चलो इत्यादि होता है। इस प्रकार बच्चा भाषा मे प्रयोग चाहे शब्दो का करे, परन्तु उनका व्यवहार, उनका भाषण, वाक्यों के लिए ही करता है। अत: भाषा का चरम अवयव ( Unit ) चाहे शब्द भले ही हो, परन्तु भाषण का चरम अवयव वाक्य ही है। सभवतया आदिम मानव जाति भी प्रारभ मे शब्दो का ही प्रयोग करती रही होगी।

जब बच्चा दो-तीन वर्ष का हो जाता है, तो वह दो-दो, तीन-तीन शब्दो का एक साथ प्रयोग करने लगता है, जैसे अम्मा, कमीज, बाजार=अम्मा कमीज पहना दो बाजार जाऊँगा। बाबू, पैसा दे दो चीज लूगाँ। बाबू, साम, तत्तीगबू=श्याम तख्ती छूता है। इसके अतिरिक्त वह अधूरे वाक्य भी बोलने लगता है जैसे बाबू पाल मारा=बाबू गोपाल ने मुझे मारा है, पूरी खा=मै पूरी खाऊगा, दूध गिरी, बिल्ली गई, कुत्ता गई, चाचा गई, बिल्ली बचा गई, बाबू आ गए, कन आ गए, कन ( किशन ) कापू ( चाहे कापी हो या किताब ) लाई। घोडा ( घोडा हो चाहे गधा ) आ इत्यादि। परन्तु उसे काल, लिग, वचन, कारक, कारक-चिन्ह, क्रिया-भेद, वस्तु-भेद आदि का ज्ञान नहीं होता। इसी प्रकार आदि कालीन मनुष्य भी वाक्य अवश्य पृथक्-पृथक् करने लगे होगे। पहले मूर्त पदार्थ तथा सबधित व्यक्तियों के नाम बने होंगे फिर धीरे-धीरे जाति वाचक, भाव वाचक शब्द भी बन गए होगे।

इसी अवस्था में बच्चे में एक और भी प्रवृत्ति पाई जाती है। वह कभी कभी शब्दों को, शायद उनकी क्लिष्टता दूर करने के लिए लपका कर कहता है जैसे गदहा (गधा) डडआ (डडा) बनरुआ (बन्दर) देदय (देदे) अये (है) इत्यादि। इतना ही नहीं कभी-कभी तो वह मस्त होकर 'झण्डा ऊँचा, झण्डा ऊँचा, 'जै विन्दे पाल, माधो दयाल' (जै गोविन्दे जै गोपाल, वेणी माधो दीन दयाल) इत्यादि लय से गाया करता है। उसकी भाषा में स्वर और लय की अधिकता होती है और उसका भाषण बड़ा प्यारा लगता है। परन्तु ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता जाता है और पूरे वाक्य बोलने लगता है त्यो-त्यो उसकी भाषा में स्वर और लय की कमी होती जाती है। यहा तक कि जब वह तीन चार वर्ष का हो जाता है तो वह लेश मात्र भी लपका कर नहीं बोलता और उसकी भाषा में व्यजनो की अधिकता और स्वरों की न्यूनता हो जाती है। वाक्शक्ति की निर्बलता के कारण वह कभी-कभी हिचकिचा जाता है और पूरी बात नहीं कह पाता। अतः भाषण अपूर्ण रहता है। परन्तु पाच वर्ष की आयु तक यह बात भी जाती रहती है।

जब बच्चा पाच वर्ष का हो जाता है और स्कूल में जाकर सभ्यता के चक्कर में पड जाता है तो उसकी भाषा की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है, वह पूर्ण और सुव्यवस्थित वाक्य बोलने लगता है और लपकाने की प्रकृति नहीं रहती। इस प्रकार बच्चा दस पाच वर्ष स्कूल में पढने के बाद साहित्यिक भाषा से परिचित हो जाता है और अपढ मनुष्यो से उत्तम भाषा बोलने लगता है।

## ८

# संवेदनात्मक विकास

### किशोरावस्था तथा संवेदनात्मक विशेषताएँ

किशोरावस्था मे बुद्धि तथा रुचि मे उतने परिवर्तन नही होते, जितने चरित्र तथा स्वभाव मे होते हैं। शारीरिक ग्रन्थियो तथा मनोवेगों मे घनिष्ठ सबध है। जिस प्रकार दु.ख मे आँसू अथवा क्रोध मे स्वेद निकल आना आदि शारीरिक परिवर्तन होते हैं, उसी प्रकार मानसिक परिवर्तन भी होते हैं। युवावस्था-सम्बन्धी ग्रन्थियों से निष्क्रमित रस का प्रारम्भिक मनोवेगो तथा भावनाओं पर बहुत प्रभाव पडता है। ग्रन्थि-सस्थान के परिपक्व होने पर मनोरागा, स्वभावगत सस्कारो तथा मूल प्रवृत्तियों मे भी बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है। अतएव इस अवस्था में शिक्षकों के सम्मुख अनेक चरित्र तथा व्यवहार-सम्बन्धी कठिनाइयाँ आती हैं।

बाल-विकास के विषय मे किसी मनोवैज्ञानिक का मत है—

"Nature has been busy, up to the age of ten or twelve in building a body for the child, she then proceeds, during the next three or four years, to install his emotional nature and after that to give him an intellect,"

अर्थात् लगभग १०-१२ वर्ष तक प्रकृति बालक की शारीरिक वृद्धि, तत्पश्चात् ३-४ वर्ष तक भावात्मक वृद्धि और अन्त मे बुद्ध्यात्मक वृद्धि करती है। चूँकि 'child is born not made' अर्थात् बालक पैदा

होता है, बनाया नहीं जाता, उसका निर्माण तथा विकास मशीन की भाँति एक के पश्चात् दूसरा पुर्ज़ा लगाने से नहीं होता, अपितु 'the child is father of the man' अर्थात् बच्चा मनुष्य का सूक्ष्म प्रतिरूप है, उसमें प्रौढ़ों मे पाई जानेवाली सभी शक्तियाँ, प्रवृत्तियाँ तथा सस्कार बीज-रूप में पाये जाते हैं, वे शनै.-शनैः विकसित तथा उन्नत होते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि सब आयु के साथ-साथ एक ही गति से उन्नत नहीं होते। अतएव वे सब एक ही साथ, एक ही समय पर परिपक्व भी नहीं होते, अपितु अपने-अपने विभिन्न समयों पर होते हैं। इस प्रकार यद्यपि उक्त सिद्धान्त असत्य है, तथापि इससे इतना प्रकाश अवश्य पड़ता है कि १०-१२ वर्ष के पश्चात् ३-४ वर्ष तक अर्थात् किशोरावस्था सवेदनात्मक परिपक्वता का समय विशेष है; विभिन्न सस्कार, मूल प्रवृत्तियाँ तथा अभिरुचियाँ इसी समय परिपक्व होती हैं। इसका जीवन के उत्थान में वही महत्त्व है, जो दिवस में प्रभात अथवा अरुणोदय का है। चूँकि इस अवस्था के पश्चात् प्रायः बालक जीवन मे प्रवेश करते हैं, अतः व्यक्तित्व-निर्माण अथवा चरित्र-गठन की यह अन्तिम श्रेणी है। अतएव शिक्षक तथा अभिभावक दोनों के लिए ही इसका बहुत कुछ महत्त्व है। इस प्रकार ११ वर्ष से कम के बालकों के शिक्षण मे शिक्षको को करीक्युलम तथा शिक्षण-प्रणाली बच्चो की अपरिपक्व बुद्धि तथा साधारण अभिरुचियो के आधार पर नियन्त्रित करनी पडती है। ११ वर्ष के पश्चात् पूर्ववर्ती प्रवृत्तियाँ परिपक्व तो हो जाती हैं, परन्तु चूकि सब एक ही मात्रा मे एक-सी उन्नत नहीं होती, अतः स्वभावगत सस्कारों, मूल प्रवृत्तियो तथा सवेगो से सम्बन्ध रखनेवाली भावात्मक विशेषताओ का भी ध्यान रखना पडता है।

भावात्मक वृद्धि की दो प्रमुख अवस्थाएँ हैं—मध्य बाल्यावस्था लगभग १० वर्ष के निकट और युवावस्था। प्रथम अवस्था में मनोवेग तीव्र तो होते हैं, परन्तु उतने स्थायी तथा दृढ नहीं होते। इस समय की प्रमुख

प्रवृत्तियाँ भय, क्रोध आदि हैं। द्वितीय अवस्था के मनोवेग दृढ, गम्भीर, स्थायी तथा जटिल होते हैं। इस समय के प्रमुख मनोवेग आदर, कृतज्ञता, घृणा, सहानुभूति, लज्जा, कामुकता, अहम्मन्यता इत्यादि हैं। प्रायः सभी मूल प्रवृत्तियो का उचित तथा परिमित प्रयोग अच्छा और अत्यधिक बुरा है। उदाहरणार्थ, यदि क्रोध-प्रदर्शन केवल अनिच्छा प्रकट करने के लिए किया जाय तो कोई हानि नहीं, परन्तु क्रोध मे आपे से बाहर हो जाना और गाली गलौज तथा मारपीट तक की नौबत आ जाना ठीक नहीं; यद्यपि कभी-कभी थोडा भय अथवा हिचकिचाहट मनुष्य को भयानक परिस्थिति मे पडने से बचा देता है, तथापि इसकी अति उसका कोई भी काम नहीं करने देती। इस प्रकार किसी भी प्रवृत्त्यात्मक अथवा मूल प्रेरणा को अबद्ध रूप से चरितार्थ होने मे पूर्ण स्वतन्त्रता देना न तो सम्भव ही है, और न हितकर ही। मध्य मार्ग अर्थात् प्रवृत्तियो के विकासार्थ स्वतन्त्र क्षेत्र न देते हुए भी उनको नष्ट-भ्रष्ट होने से बचाने के लिए उसका उचित प्रयोग करते रहना, सर्वश्रेष्ठ है। अतः जीवन की सबसे बडी आवश्यकता प्रवृत्त्यात्मक नियमन अर्थात् दृढसकल्प और आत्मसयम की है। चूकि सवग, मानसिक क्रियाओ के सचालक होते हुए भी, उच्च मानसिक शक्तियो द्वारा शासित होते है, अतः आत्मसयम की शक्ति बच्चो की अपेक्षा प्रौढ़ो मे अधिक होती है। युवावस्था तक प्रायः बालक क्रोध आदि सभी साधारण प्रवृत्तियो पर शासन कर सकता है, परन्तु काम-वृत्ति का शासन उसकी शक्ति के बाहर है। यहा तक कि जिन लडकों मे कामुकता अधिक प्रबल होती है, वे प्रायः युवावस्था मे सुस्त तथा गम्भीर हो जाते है। अध्यापको तथा अभिभावको को ऐसे बालको का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

इस समय किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के प्रति उत्पन्न होनेवाली श्रद्धा एव रुचि दृढ भाव ( Sentiment ) का रूप धारण कर लेती है। भावो का बनाना बुरा नही, परन्तु शिक्षको को इतना अवश्य ध्यान रखना

चाहिए कि उचित तथा सुन्दर भाव उत्पन्न हो। युवावस्था की सर्वप्रमुख तथा बलिष्ठ प्रवृत्ति कामुकता है, अत. इसकी अपेक्षाकृत विस्तृत चर्चा करेंगे।

## काम-वृत्ति तथा काम-शिक्षा

यौवनोद्गम काल में मूल सस्कार अथवा प्रवृत्ति सस्थान की परिपक्वता का सर्वप्रमुख तथा प्रथम प्रभाव स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध के मूल मे रहनेवाली गूढ़ प्रवृत्ति ( Sex instinct—काम-वृत्ति ) की प्रबलता है। फ्राइड ने सैक्स को बहुत महत्त्व दिया है। इस समय जननेन्द्रिय का आकार एकाएक बहुत कुछ बढ जाता है, जिससे बालक का ध्यान अवश्य ही उधर खिंच जाता है और उसके मन मे एक गुप्त कामना उत्पन्न होती है, जिसके फलस्वरूप उसमे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से एक प्रकार की दबी हुई-सी घृणा अथवा आशका उत्पन्न होती है। कभी यह भावना अत्यन्त गुप्त होती है और कभी अत्यन्त प्रकट। इस समय काम-सम्बन्धी शिक्षा ( Sex-education ) देनी चाहिए। परन्तु बड़े खेद का विषय है कि सभ्य समाज इस कार्य को घृणा की दृष्टि से देखता है और काम-शिक्षा देना तो दूर रहा, काम-वृत्ति को मन के अतल गह्वर मे दबाना ही अपना कर्तव्य समझता है और शिक्षा का उद्देश्य सांस्कृतिक सफलता-प्राप्ति के हेतु सदैव से इसका दमन करना ही रहा है। मन के प्राकृतिक उद्वेग को रोकने का वही फल होता है, जो हिमाच्छादित पर्वतकन्दरा से प्रस्फुटित प्राकृतिक स्रोत को रोकने का होता है। जिस प्रकार प्राकृतिक स्रोत अथवा जलप्रवाह को बाँधना असम्भव है, वह किसी न किसी मार्ग से फूट ही निकलता है, उसी प्रकार मन के सहज उद्वेगों का दमन भी असम्भव है, वे परोक्ष अथवा किसी न किसी अप्राकृतिक रूप से फूट ही निकलते हैं। किशोरावस्था मे बालक अपने बड़ो से 'बच्चा कैसे पैदा होता है, वह माँ के पेट मे कहाँ से आ जाता है, माता-पिता के बीच मे क्या सम्बन्ध है, जननेद्रिय का क्या

उपयोग है' इत्यादि अनेक प्रश्न किया करता है । प्रायः माता-पिता, शिक्षक आदि बालकों की काम विषयक शंकाओं का समाधान झूठे-सच्चे उत्तर देकर कर देते हैं अथवा उन्हे डॉट-डपटकर टाल देते हैं । फल यह होता है कि वे उक्त ज्ञान अनुचित रूप से प्राप्त करते हैं और अतृप्त इच्छाओं को उपन्यास कहानियां आदि पढकर, सिनेमा आदि देखकर, घर के नौकरों-चाकरों तथा अपने सहपाठियों से गन्दी बातें करके तृप्त करते हैं। चूंकि यह ज्ञान किसी विशेषज्ञ द्वारा प्राप्त नहीं होता, अतः भ्रामक होता है और अनेक दुर्व्यसनों तथा कुटेवों का कारण बन जाता है, जिनके फलस्वरूप बालकों में विभिन्न रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यदि किसी प्रकार उक्त प्रवृत्ति दब जाती है और उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है, तो प्रायः बालक चिडचिडा, उदासीन अथवा विरक्त-सा हो जाता है। जिस प्रकार भूख न होने पर स्वादिष्ट भोजन भी अरुचिकर प्रतीत होता है और थोडा-सा भी खा लेने पर अत्याहार होकर अजीर्ण हो जाता है अथवा तीव्र भूख लगने पर भी न खाने से भूख मर जाती है और शरीर दुर्बल होकर रुग्ण होने लगता है, परन्तु यदि इस समय रूखा-सूखा भोजन भी मिल जाय, तो क्षुधा शान्त हो जाती है और भोजन अंग को लगता है, ठीक यही दशा ज्ञान-सम्बन्धी जिज्ञासा की भी है। ज्ञान मस्तिष्क का भोजन है। उसकी जिज्ञासा एक प्रकार की पिपासा अथवा क्षुधा है। किसी विषय विशेष की ज्ञान-क्षुधा लगने के पूर्व ज्ञान प्रदान करने से वह केवल निष्फल ही नहीं जाता, अपितु दुष्परिणामरूपी अजीर्ण भी उत्पन्न करता है और ज्ञान-क्षुधा लगने पर भी मस्तिष्क को उचित ज्ञान न मिलने से ज्ञान-क्षुधा ही नहीं मर जाती, अपितु मानसिक रोग भी उत्पन्न हो जाते है। चूंकि किशोरावस्था में ज्ञान-पिपासा तीव्र होती है और बालकों में काम-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा प्रबल होती है, अतः इस समय काम शिक्षा देना परमावश्यक है। अतएव माता-पिता तथा शिक्षक का कर्तव्य है कि वे काम-वृत्ति को घृणित न समझें और बालकों के काम विषयक प्रश्नों का

उचित उत्तर दे और काम-शिक्षा देने मे सकोच न करे। डाक्टर स्ट्राल का कहना है कि—

"Information on sexual subjects should be given in exactly the same tone of voice, in the same manner, with the same directness, as information on other subjects"

अर्थात् बालकों को काम-सम्बन्धी बाते ठीक उसी प्रकार प्रत्यक्ष रूप से निःसकोच सिखानी चाहिएँ, जिस प्रकार अन्य विषय सिखाये जाते हैं। चू कि भारतवर्ष में सैक्स-सम्बन्धी सामाजिक शासन पाश्चात्य देशों की अपेक्षा अधिक बडा है; इस विषय मे न तो उतनी स्वच्छन्दता ही है और न उतने उच्च विचार ही, अत· उतने प्रत्यक्ष और स्पष्ट ढग से तो इस विषय की शिक्षा नहीं देनी चाहिए, हा, इसमे कोई सन्देह नहीं कि इस समय काम-शिक्षा दी अवश्य जानी चाहिए और दी भी जानी चाहिए माता-पिता तथा शिक्षक द्वारा ही। अब प्रश्न है कि उक्त शिक्षा किस प्रकार दी जाय। मेरी समझ से तो काम-शिक्षा के प्रति घृणित भाव न चाहिए और उसे प्रत्यक्षतः स्पष्ट रूप से प्रदान करने की अपेक्षा परोक्ष रूप से ही प्रसगानुसार प्रदान करना अधिक हितकर है। वनस्पति-विज्ञान, प्रकृति-निरीक्षण, शरीर-विज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान तथा सामाजिक जीवन के पाठों में पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों, मनुष्य के अग-प्रत्यगों के साथ नरतिल्ली, मादातिल्ली गर्भकेसर, बच्चेदानी, पालीनेशन, ट्रासफारमेशन इत्यादि की चर्चा करते समय गर्भाधान, जननेंद्रिय-सम्बन्धी रोग इत्यादि की शिक्षा भी प्रदान कर देनी चाहिए। हॉ, इस समय दो-एक बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। प्रथम जब शिक्षक काम-शिक्षा दे, तो उसे अपने मन से यह भाव निकाल देना चाहिए कि वह किसी घृणित अथवा गुप्त वस्तु के विषय मे बात चीत कर रहा है, उसका मन स्वच्छ तथा शुद्ध होना चाहिए। उसके मन मे किसी प्रकार की ग्लानि अथवा सकोच, ओठो पर

मुस्कराहट आदि न होना चाहिए। उसी तरह सरल रीति से बातचीत करनी चाहिए जैसे वह पाठ-विषयक अन्य बातें करता है। द्वितीय, प्रत्येक बात स्पष्टतः साधारण भाषा द्वारा नहीं बताई जा सकती; अतः भाषा का प्रयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिए। गन्दे भाव उत्पन्न करने वाले अश्लील शब्दों का प्रयोग न करना चाहिए। तृतीय कभी-कभी किसी-किसी बालक को इस विषय की शिक्षा अलग निजी तौर पर भी दी जा सकती है, परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसा प्रत्येक बालक के साथ नहीं किया जा सकता, कारण कि सभी बालक समान नहीं होते, विभिन्न बालकों के भावों, विचारों तथा ज्ञानों में बहुत भेद होता है। किस बालक को इस प्रकार समझाया जा सकता है, यह बालक के भावों, विचारों तथा चरित्र पर और अध्यापक के साथ उसके व्यवहार पर निर्भर है।

इस विषय को समाप्त करने के पूर्व काम-वृत्ति के विकास की संक्षिप्त विवेचना कर देना नितांत आवश्यक प्रतीत होता है, कारण कि यह विषय विवादग्रस्त है और इसमें प्राचीन तथा नवीन मतों और विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के मतों में बहुत कुछ मत-भेद है।

## काम-वृत्ति का विकास

प्राचीन मनोवैज्ञानिकों ने 'काम' शब्द को अत्यंत संकुचित अर्थ में लिया है। उनके अनुसार काम से आशय जननेंद्रिय-सम्बन्धी उत्तेजना, स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध के मूल में रहने वाली गूढ़ प्रवृत्ति अथवा सहवास की इच्छा से है। यही कारण है कि वे इस बात को भी भूल गये हैं कि मनुष्य में कोई भी प्रवृत्ति एकाएक उत्पन्न नहीं होती तथा प्रौढ़ों में पाई जानेवाली सभी प्रवृत्तियाँ बच्चों में पाई जानेवाली सूक्ष्म अथवा बीजरूप प्रवृत्तियों के उन्नत तथा विकसित स्वरूप हैं और उन्होंने यौवन-काल में पदार्पण करते ही एकाएक रति की भाँति काम-भाव का प्रस्फुटित होना मान लिया है। वास्तव में 'काम' शब्द विस्तृत है। इससे आशय किसी भी प्राणीमात्र पर आसक्ति अथवा प्रेम हो जाने से है और इसके

अन्तर्गत पैतृक-प्रेम, कौटुम्बिक-प्रेम आदि भी आ जाते हैं और माता-पिता, भाई-बहन आदि ही नही, अपितु स्वय अपना शरीर तक प्रेम-पात्र अथवा वासना-केन्द्र हो सकता है। डा० फ्राइड ने 'काम' को इसी विस्तृत अर्थ मे लिया है और प्रौढकालीन काम-वृत्ति को शैशव-कालीन काम-वृत्ति का ही विकसित रूप बताकर दोनों को परस्पर सम्बन्धित करके काम-प्रवृत्ति की उद्भावना जीवन के प्रारम्भ से ही मानी है और मानसिक रोगियो के मनोविश्लेषण द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि काम-वृत्ति जन्मजात मूल प्रेरणा है और इसकी जाग्रति जन्म के कुछ दिन पश्चात् ही हो जाती है। यौवनोद्गम-काल के पूर्व तथा पश्चात् की काम-वासना मे भेद केवल रूप तथा पात्र का है। डा० फ्राइड के अनुसार काम-भाव का आविर्भाव दो धाराओ मे होता है। उसके विकास की 'ओरल स्टेज' ( Oral Stage ) तथा 'एनल स्टेज' ( Annal Stage ) दो मुख्य अवस्थाएँ हैं जो सुप्तावस्था से एक दूसरे से पृथक् होती हैं। ओरल स्टेज लगभग ६-७ वर्ष तक रहता है और इसमे काम-वासना का जननेन्द्रिय से कोई सम्बन्ध नहीं होता, एनल स्टेज युवावस्था से प्रारम्भ होता है और इसमे काम-वासना जननेन्द्रिय सम्बन्धी होती है। इन दोनो अवस्थाओ के बीच उत्तरबाल्य काल से यौवनोद्गम-काल तक सुप्तावस्था रहती है, जिसमे काम-वासना मन्द रहती है। उन्होने काम-वृत्ति की प्रमुख विकास-श्रेणियाँ निम्नलिखित मानी हैं—

( १ ) स्व-शरीर रति की अवस्था ( Auto-erotic Stage )—प्रारम्भ मे बच्चे को विभिन्न शरीरावयवो अथवा इन्द्रियो की उत्तेजना मे आनन्द मिलता है, अत उसका प्रेम-पात्र स्वय उसका शरीर होता है और उसकी वासनाएँ आभ्यन्तरिक होती हैं और उनकी तृप्ति उसके शरीर के भीतर ही हो जाती है। इस समय के मुख्य वासना-केन्द्र मुख, चक्षु, गुदा तथा जननेन्द्रिय हैं। सर्वप्रथम शिशु माता का स्तन, दूध की शीशी, शहद की चुसनी, दुद्धी लगी हुई तुतई, स्वय अपनी उँगली अथवा अँगूठा

आदि वस्तुएँ मुख के भीतर ले जाने में आनन्द का अनुभव करता है। यही कारण है कि प्रायः बालक अपनी दादी-नानी आदि के शुष्क स्तन को अथवा रिक्त तुतई, शहद की चुसनी, हाथ पैर का अँगूठा, इत्यादि निरर्थक ही. कोई खाद्य पदार्थ अथवा स्वाद न होने पर भी, चचोड़ा करता है। इससे उसके मुख की उत्तेजना शान्त और वासना तृप्त होती है। तत्पश्चात् प्रायः बालक अग्नि, दिया, विद्युत् आदि का प्रकाश तथा रंग-बिरंगे खेल-खिलौने एकटक देखने में आनन्द का अनुभव करता है। तदुपरान्त उसे मलद्वार से मल निकालने तथा रोकने में और अन्त में जननेन्द्रिय से मूत्र निष्क्रमित करने तथा रोकने में सुख प्रतीत होने लगता है। यही कारण है कि कभी-कभी बच्चे जननेन्द्रिय को छुआ करते हैं।

( २ ) **आत्म-रति की अवस्था** (Narissim Stage)—यह अवस्था लगभग दो-ढाई वर्ष तक रहती है। इसमें बालक स्वयं अपने को ही वासना-केन्द्र बनाकर प्रेम-पात्र बना लेता है और सबसे अधिक प्यार करता है। हाथ-पैर उछालना, किलकारी मारना, हँसना, ताली बजाना, 'ता' आदि करना, चलना, नाचना आदि अनेक क्रियाएँ किसी दूसरे के लिए नहीं होतीं, अपितु इनमें उसे सहज आनन्द आता है और वे आत्म-तुष्टि के लिए होती हैं।

(३) **बाह्य रति की अवस्था** (Allo-erotism)—यह अवस्था ६–७ वर्ष तक रहती है। इसमें वासना अपने शरीर के अतिरिक्त किसी बाह्य प्राणी पर केंद्रित हो जाती है। प्रारम्भ में लगभग २–३ वर्ष तक उसकी प्रेमपात्र उसकी माता अथवा धाय होती है। इस समय वह पिता को माता के प्रेम में बाधक समझता है। परन्तु कुछ समय पश्चात् जब वह उसके लिए खेल-खिलौने, मीठा-सीठा आदि लाने लगता है, तो वह उससे भी प्रेम करने लगता है। अन्त में जब भाई-बहन उसे भीतर-बाहर लाने ले जाने लगते हैं, खाने-पीने की वस्तु देने लगते हैं, तो वह उनको

ओर आकर्षित हो जाता है। तीन वर्ष के पश्चात् जब वह स्वयं घर के बाहर-भीतर आने जाने लगता है और अन्य साथी खेलने को मिल जाते हैं, तो उसका प्रेम माता-पिता, भाई-बहन आदि से हटकर साथी बालकों की ओर अर्थात् लड़कों का लड़कों की ओर और लड़कियों का लड़कियों की ओर आकर्षित हो जाता है। यही कारण है कि कभी-कभी जब कि वे अन्य बालकों के साथ बाहर खेलते होते हैं, तो माता पिता के खाने-पीने वस्तु आदि का लालच देने तथा बहलाने-फुसलाने पर भी वे अपने साथियों तथा खेल को छोड़कर नहीं आते हैं। यह अवस्था ६-७ वर्ष तक रहती है।

(४) **सुप्तरति की अवस्था** (Lauency Period)—यह ६–७ वर्ष से यौवनोद्गम के पूर्व लगभग १०–११ वर्ष तक रहती है। इसमें वासना मन्द पड़ जाती है। बालक अन्य बातों में इतना मग्न रहता है कि उसका ध्यान ही इधर नहीं जाता और काम-वासना सुप्तावस्था में पड़ी रहती है। यद्यपि घृणा, लज्जा आदि भावों का प्रदर्शन ४–५ वर्ष की आयु से प्रकट हो । है।

(५) **मित्र-रति की अवस्था**—यह १०–११ से १२–१३ वर्ष तक रहती है। इस समय अभिनयात्मक क्रीडाओं का समय समाप्त हो जाता है और दलबद्धता की प्रवृत्ति अधिक प्रबल होती है। अतः बालक अपने दल के अन्य बालकों की ओर आकर्षित होने लगता है और पारस्परिक मित्रता उत्पन्न हो जाती है। अतः सामाजिक जीवन में 'काम' का बहुत महत्व है और वह एक मूलभूत प्रेरणा अथवा शक्ति है। यहाँ यह न भूलना चाहिए कि उक्त दल तथा मित्रता सजातीय बालकों में ही होती है, कारण किशोरावस्था में पदार्पण करते ही लड़कियाँ अधिक संकोची और लड़के अहंकारी होने लगते हैं। लड़कियों को लड़कों के साथ खेलने, मिलने, जुलने आदि में लज्जा और लड़कों को तुच्छता प्रतीत होती है और उनका पारस्परिक सम्बन्ध पूर्ववत् अबद्ध तथा निःसंकोच नहीं रहता।

(६) स्त्री-पुरुष रति की अवस्था—अन्त मे यौवन के पदार्पण करते ही लगभग १२–१३ वर्ष मे वह अवस्था आ जाती है, जिसमे काम-वासना का वही अर्थ होजाता है कि प्रायः लोग समझा करते हैं अर्थात् 'स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध के मूल मे रहनेवाली गूढ़ प्रवृत्ति'। इसके पूर्व काम-वासना साधारण होती है और वह जननेंद्रिय द्वारा प्रेरित नहीं होती, परन्तु इस अवस्था मे वह जननेन्द्रिय से सम्बन्धित हो जाती है और उसका केन्द्र इतरजातीय व्यक्ति अर्थात् युवक का युवती और युवती का युवक होता है और वे परस्पर एक दूसरे की ओर आकर्षित होने लगते हैं; परन्तु यह आकर्षण अथवा प्रेम पूर्ववत् सरल तथा केवल मित्र सम्बन्धी नही होता, अपितु स्त्री-पुरुष के पारस्परिक प्रेम के समान होता है और इसकी बाढ इतनी तीव्रता से आती है कि यदि प्रकृति ने इसमे सुशीलता, सकोच अथवा लज्जारूपी बाँध न लगा दिये होते, तो ईश्वर जाने इसकी धारा युवक-युवतियो को कहाँ ले जाती और क्या-क्या करा डालती। यही कारण है कि प्राय. इस अवस्था मे लगभग १४-१५ वर्ष की आयु मे लडके लडकियो मे प्रेम-सम्बन्ध जुड जाता है और प्रेम-घटनाएँ घटित हुआ करती हैं। इस समय बालको को प्रेम-कथाएँ तथा उपन्यास पढने मे भी आनन्द का अनुभव होने लगता है, कारण कि उनमे उनकी काम-वासना के प्रदर्शन के लिए क्षेत्र और मानसिक तृप्ति के लिए पर्याप्त सामग्री मिल जाती है। कभी-कभी काम वृत्ति दूषित भावों, विचारो, चित्रो तथा विजातीय व्यक्तियो के व्यवहार द्वारा भी उत्तेजित होती है, क्योकि इस समय काम वृत्ति अपरिपक्व होती है, अतः सहज मे ही तनिक-सी असावधानी से ही दूषित तथा विकृत हो जाती है और बालक अनेक प्रकार की कुटेवो अथवा दुर्व्यसनों मे ही नही पड जाते, अपितु काम-प्रवृत्ति का उचित विकास भी अवरुद्ध हो जाता है और किशोरावस्था के प्रारम्भ की सलिंगीय बालको के प्रति मित्र-भाव की प्रवृत्ति अधिक समय तक चलते रहने के कारण कुत्सित प्रेम-भाव का रूप धारण कर लेती है और १६ वर्ष की अवस्था आने पर भी इतर जातीय व्यक्तियों के प्रति

उत्पन्न होनेवाली उस समय की स्वाभाविक प्रेम-भावना में परिवर्तित नहीं होती। चूँकि इस अवस्था में जो स्वभाव पड जाता है वह प्रौढावस्था में भी चलता रहता है और उसका चरित्र पर बहुत प्रभाव पडता है, अतः लगभग १६–१७ वर्ष तक अर्थात् जब तक कि काम-वृत्ति परिपक्व न हो जाय, उसके उन्नयन (Sublimation) की बडी आवश्यकता है जो कि पढने-लिखने खेलने-कूदने—विशेषकर अधिक परिश्रम तथा प्रयत्न के खेल से बचने वाले समय को अखाडेबाजी, प्रकृति-निरीक्षण, ड्राइंग, चित्रकारी, कविता आदि में परिवर्तित कर देने से सहज ही हो जाता है। काम-वासना का परिष्कृत रूप (Sudlimated sex instinct) कविता-कला आदि का जन्मदाता भी है, चूँकि इस समय की प्रेम-भावना अत्यन्त उत्कट होती है, अत. उसे निःस्वार्थ समाज अथवा देशसेवा के भाव में परिवर्तित कर देना भी अच्छा है।

( ७ ) **जननसाधक रति की अवस्था**—लगभग १७-१८ वर्ष की अवस्था में काम-प्रवृत्ति परिपक्व होकर जनन कार्य की साधक बन जाती है। इस समय स्त्री-पुरुष का प्रेम सन्तानोत्पत्ति की वासना का रूप धारण कर लेता है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का यह उचित समय है।

---

६

# बच्चो के खेलों का विकार.

## ( जन्म से ४-५ वर्ष तक )

जन्मजात शिशु इतना अबोध तथा अशक्त होता है कि उसको रोने, दूध पीने तथा मल मूत्र त्यागने के अतिरिक्त न तो किसी वस्तु का ज्ञान ही होता है और न वह कुछ कर ही सकता है । यदि इस समय उसको निस्सहाय अवस्था मे छोड़ दिया जाय, तो उसका दो चार घटे जीवित रहना भी दुर्लभ हो जाय । खेलों का सबध ऑख-कान, हाथ-पैर, चेतना आदि से है, परन्तु जन्म-जात शिशु की न तो ऑख ही पूर्णतः कार्य करती है और न कान ही । चेतना भी उसमे नहीं के बराबर होती है । यदि उसके पिन चुभो दी जाय, तो भी शायद उसे पता न चले । कही कारण है कि प्रायः माता-पिता बच्चो की छठी अगुली ( जिनके होती है ) उनके पैदा होते ही कटवा देते हैं अथवा मुसलमानो मे बहुत से बच्चो की मुसलमानी इस समय हो जाती है । एक दिन का बालक रोशनी तक नहीं देख सकता, परतु पॉचवे दिन उसको रोशनी का ज्ञान होने लगता है और उसकी निगाह उस पर ठहरने लगती और लगभग महीने सवा महीने तक तो उसकी दृष्टि पूर्णतः ठहर जाती है और वह चलती-फिरती वस्तुओं की ओर दृष्टि घुमाने-फिराने लगता है । कर्णेंद्रिय की भी यही दशा है । लगभग दो-तीन दिन तक तो उसके कर्ण-पटल मे वायु का प्रवेश ही नहीं होता, परन्तु चौदहवे पन्द्रहवे दिन तक बच्चा सुनने लगता है अतः प्रारभ मे तो उसे मनोरजन के लिए किसी खेल आदि की आवश्कता नहीं होती, परंतु ज्यों-ज्यां आयु बढती जाती है, त्यों-त्यों शारीरिक तथा मानसिक

शक्तियाँ भी बढ़ती जाती हैं और तदनुसार ही मन बहलाने के लिए खेलों की आवश्यकता भी बढ़ती जाती है। लगभग तीन मास में बालक को अपने शरीरांगों का भी अनुभव होने लगता है और वह माता का स्तन, अपने आथ की अंगुली अथवा अंगूठा, दूध की शीशी, रबड़ की दुद्धी आदि चूसने मे आनंद का अनुभव करने लगता है। लगभग तीन मास में बालक की गर्दन टिक जाती है और चौथे पाचवे महीने मे उसे उलट कर गर्दन उठाकर इधर उधर देखना, मुंह से अस्पष्ट ध्वनि निष्क्रमित करना, हाथ-पैर हिलाना तथा करवट लेना या उलट जाना अच्छा लगता है। इस समय उसे लैम्प, बिजली आदि की रोशनी तथा रंगीन खेल-खिलौने आदि देखना भी अच्छा लगता है। इस प्रकार लगभग ६ मास के बालक को अपने शरीर के अंगो का भली भाति ज्ञान हो जाता है और वह शरीर से खेलने, हाथ-पैर उछालने, गूँ-गूँ करने और हँसने लगता है। ६ मास के पश्चात् उनके जीवन मे एक नवीन परिवर्तन होता है। तीन चार मास तक उसमे अन्य प्राणियों तथा बाह्य वस्तुओं को देखने की रुचि नहीं होती, परंतु इस समय वह चलते-फिरते प्राणियो तथा वस्तुओं की ओर निगाह उठा कर देखने मे आनंद का अनुभव करने लगता है। इस समय तक वह उल्टा होकर पेट के बल आगे-पीछे को खिसकने भी लगता है। इस आयु में रङ्गीन तथा चमकीले खेल-खिलौने, कागज-पत्तर कपड़ा-लत्ता, आदि बालक के पास डाल देने चाहिएँ, जिससे वह खेलना सीखे। कभी-कभी मा-बाप इस कार्य मे बहुत शीघ्रता करते हैं। वे चाहते हैं कि उनका बच्चा जल्दी से शरीर के अंगो पर अधिकार कर ले और हँसने-खेलने, बैठने-उठने, उछलने-कूदने लगे। ऐसा करने से उसकी शारीरिक वृद्धि के क्रम मे बाधा पड़ जाती है और वह क्रोधी, चिड़चिड़ा, और जिद्दी हो जाता है। ६ मास तक बालक माता को भली भाँति और पिता को कुछ-कुछ पहचानने लगता है और यह देख कर कि वे उसके हँसने मे खुश होते हैं, वह बहुत प्रसन्न होता है और हाथ-पैर उछालने लगता है। धीरे-धीरे वह बातें करते समय माँ के मुख पर होने वाली

चेष्टाओ को भी समझने लगता है, परतु इसके यह अर्थ नही है कि वह माता-पिता को प्रसन्न करने के लिए ऐसा करता है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि ४–५ वर्ष तक बालक की रुचि आत्म-सम्बधी होती है, पर-सम्बन्धी नही अर्थात् वह जो कुछ क्रियाएँ करता या खेल खेलता है, वे आत्म-तुष्टि अथवा आत्म-मनोरजन के लिए होते हैं, किसी दूसरे को प्रसन्न करने के लिए नही। यही कारण है कि प्रायः ६-७ मास का बालक बहुत देर तक खाट पर अकेला पड़ा-पड़ा मुंह से कूं-कूं, गूँ-गूँ आदि शब्द और हाथों-पैरों से जल्दी-जल्दी साइकिल-सी चलाता रहता है। इस समय माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चे के साथ कुछ देर तक खेले, उससे-मीठी मीठी बाते करे और मधुर गीत तथा लोरिया सुनाएँ, जिससे वह भाषा सुनने का अभ्यस्त होकर बोलना सीख जाय, परतु उससे ऊँचे स्वर मे न बोले अन्यथा वह सहम जायगा और सदा के लिए डरपोक तथा बुजदिल हो जायगा। ५–६ मास के बालक गीत लोरियाँ आदि सुन कर बडे प्रसन्न होते हैं।

लगभग ६–७ मास मे बालक चमकीली वस्तुओ, लकडी, मिट्टी, चीनी, गट्टापार्चे तथा रबड़ के रग-बिरगे खिलोनो, कागज, दियासलाई की डिब्बी आदि से भी खेलने लगता है। इस सबको वह कसकर हाथों मे पकड़ने तथा मुह मे रखने में अत्यत आनंद का अनुभव करता है। इस समय चमकता हुआ चम्मच उसे अत्यत प्रिय लगता है और वह उसे मुट्ठी में पकड कर, चबाकर और उसमे अपना मुह देख कर बहुत प्रसन्न होता है। इस समय उसे रबड की चिडिया, गुडिया तथा गेंद आदि अच्छी लगती हैं। इस समय उसे ताली का गुच्छा डोरे या फीते की रील, जिस पर से डोरा या फीता उतारना उसे अच्छा लगता है, क़ागज का तोता, फिरकी आदि, खिलौने देने चाहिए। इस समय बच्चा अपनी खाट पर पड़ा हुआ, ऊपर टंगा हुआ लाल कपडा, गुडिया, गट्टा-पार्चे की लाल मछली आदि देख कर बहुत उछलता कूदता है। (सभवतः

लाल रग अधिक चटकीला होने के कारण बालक को सर्व-प्रिय लगता है)। इस प्रकार खिलौनों से खेलना और हाथ-पैर चलाना स्वास्थ्य तथा शारीरिक उन्नति के लिए अत्यत लाभदायक है, कारण कि इसके द्वारा हाथो-पैरो की अच्छी कसरत हो जाती है।

लगभग ७-८ मास मे बालक बैठने तथा घुटने चलने योग्य होने लगता है और उसे पानी में मुंह देखने तथा छप-छप करने, गुधे हुए आटे, उबले हुए आलू, घुइयॉ, गीली मिट्टी, इत्यादि मे हाथ डालने मे बड़ा आनंद आता है। इस समय उसे जमीन तथा दीवार कुरेदने और मिट्टी खाने मे भी बहुत आनंद आता है। मिट्टी खाना ठीक नही। बालक को खिलौने इत्यादि देकर रोकना चाहिए।

लगभग ९ मास मे बालक को विभिन्न वस्तुओ की ध्वनि सुनने मे भी आनद आने लगता है, अतः उसे झुन-झुना, रबड़ की बोलने वाली चिड़या, गुड़िया आदि बजने वाले खिलौने और घड़ी की घंटी आदि सुनना बढा प्रिय लगता है। उस समय वह गेद, गुडिएं, रबड़ के खिलौने आदि दबा कर, चम्मच, कटोरी, मिट्टी के खिलौने आदि फेक कर, कागज फाड़ कर, झुनझुने बजा कर, उनकी ध्वनि सुनने और साथ ही साथ अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने की चेष्टा करता है। इस समय उसमें चित्रादि देखने की रुचि भी उत्पन्न हो जाती है और वह पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं के पन्ने उलटने-पुलटने लगता है। उसे कागज पर छपी हुई गाय-बैल, कुत्ता-बिल्ली, तोता आदि जानवरों की तसवीरे देखने मे भी बड़ा आनद आता है, परन्तु क्योंकि उसमें कागज को तोड़-मरोड़ अथवा फाड-फूड कर उसकी ध्वनि सुनने की भी प्रवृत्ति होती है, अतः वह प्रायः कागज की तसवीरें फाड डालता है। कागज फाडने की प्रवृत्ति के प्रबल होने से ध्वंसात्मक प्रवृत्ति के अत्यधिक बढ जाने का डर रहता है, अत बच्चों को कागज की तसवीरों के स्थान मे कपडे पर छपी हुई तसवीरें देनी चाहिये और उनके कमरे को रगीन खिलौनों तथा चित्रों से सुसज्जित रखना चाहिए।

लगभग ६–१० मास मे बच्चो में अपनी माता, धाय आदि के साथ खेलने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है और वह माँ को देखकर हाथ-पैर फेंकने, उछलने-कूदने तथा किलकारी मारने लगता है और माताए भी उनको ऐसा करते देखकर अन्यत प्रसन्न होती हैं। अतः माता-पिता को भी चाहिए कि वे थोड़ी देर तक बालक के साथ खेलें। चूकि बालक में इस समय अनुकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न हो जाती है; अतः वे इसके द्वारा उसको अनेकों उपयोगी अनुकरणात्मक खेल सिखा सकते हैं। उदाहरणार्थ वे उसको जीभ निकालना, जीभ चटकारना, पुचकारना आदि 'ताली बजी ताल से, लाला आए बजार से' कहकर ताली बजाना, हाथ जोड़कर नमस्ते अथवा जै करना, कोई वस्तु देने पर हाथ उठाकर 'बच्चा इतना बड़ा' अथवा 'भैया कड़ुए नीम से भी बड़ा' इत्यादि कहकर हाथ उठाना। चदा, चिड़िया आदि दिखाकर 'चदा मामा आजा, भैया को सुलाजा, आजा री चिड़िया आजा, मुन्नी को सुलाजा' आदि कहकर हाथ से बुलाना, हाथ उठाकर हाथ का प्यार देना, इत्यादि खेल सिखा सकते हैं। इस समय बालक को कुर्सी खाट, आदि के सहारे खड़ा होना और चलना एव किसी की गोदी मे जाने पर ऊपर को चढना भी अच्छा लगता है। इससे बालक का अपने शरीरागो तथा स्नायुओं पर अधिकार बढता है।

लगभग ११-१२ मास मे बालक मे भाषार्जन करने की रुचि भी पाई जाती है और वह बार-बार सुने जाने वाले नाम जैसे मा, अम्मा, चाचा, बुआ, पापा, मामा, अब्बा आदि बोलने लगता है। यह बोलना भी प्रारभ मे उसके लिए खेल स्वरूप रहता है। यही कारण है कि वह कभी-कभी स्वय ही झटके से बुआ, चाचा आदि दोहराया करता है। अतः माता-पिता को चाहिए कि वे इस समय एक ही शब्द को खेल स्वरूप बार-बार दोहरा कर बालक को बोलना सिखायें। अनुकरण करने की प्रवत्ति लग-भग ५—७ वर्ष तक चलती रहती है।

इस प्रकार यद्यपि ६–७ मास के बाद बालक विभिन्न पदार्थों तथा खिलौनों से खेलने लगता है, तथापि इसकी सबसे अधिक रुचि एक वर्ष के पश्चात् ही होती है; परंतु इसके यह मानी नहीं हैं कि उसकी स्व-शरीर से खेलने की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है, अपने शरीर से खेलने की प्रवृत्ति प्रायः दो वर्ष तक चलती रहती है। यही कारण है कि वर्ष डेढ़ वर्ष के बालकों को भी उछलने-कूदने, नाचने-हसने, किलकारी मारने ऊपर नीचे चढ़ने-उतरने में बहुत आनंद आता है। इससे उसके अग, इंद्रियाँ तथा स्नायु दृढ होते हैं। खिलौनों से खेलने की उसकी प्रवृत्ति लगभग ६ वर्ष तक चलती रहती है।

एक वर्ष के पश्चात् जिज्ञासा-प्रवृत्ति का प्रत्यक्षतः आविर्भाव हो जाता है। अतः १ से २ वर्ष तक के बालक की खिलौने तथा अन्य क्रीडा-पदार्थ देखकर ही तुष्टि नही होती, वह उन्हें हाथ से टटोलकर; ऊपर नीचे उलट-पुलट कर, फेंक कर, तोड़-फोड़ कर भी देखना चाहता है। उदाहरणार्थ बच्चा शीशे मे अपना मुख देखकर अथवा घड़ी की घटी सुनकर उसे प्रथम उलट-पलट कर देखता है और जब उसकी समझ मे कुछ नही आता, तो उसे उठाकर पटक देता है और तोड़कर उसके भीतर देखना चाहता है। इसी प्रकार पेंसिल अथवा कलम हाथ लग जाने पर वह उससे टेढी-मेढी लकीरें खीच डालता है, सजी हुई अथवा क्रम से रखी हुई वस्तुओं को इधर-उधर कर डालता है। इस समय उसे ऊपर से नीचे वस्तुए फेकने में बड़ा आनन्द आता है। इस प्रकार ध्वसात्मक-क्रीडाओ मे उसे अपनी शक्ति का बोध और पदार्थों का ज्ञान होने के अतिरिक्त विजय का सा आनन्द भी आता है। ध्वसात्मक खेलों की प्रवृत्ति प्रायः २ वर्ष के पश्चात् भी लगभग ४ वर्ष तक चलती रहती है। इस अवस्था मे बालक को ऐसे खिलौने न देने चाहिएं जो शीघ्र टूट-फूट जॉय, अन्यथा उसकी विभिन्न वस्तुए तोड़ने-फोड़ने और व्यर्थ हानि करने की आदत पड़ जायगी। इस समय उसे लकड़ी, टीन आदि

के खिलौने देने चाहिएं और इतने पर भी यदि बालक कोई खिलौना तोड़-फोड डाले और हानि कर दे, तो उसे मारना-पीटना, डाटना-डपटना अथवा उसपर क्रोधित होना न चाहिए, अपितु प्रेम और सहानुभूति के साथ बुद्धिमानी से काम लेना चाहिए। इस अवस्था मे बालको को पानी में खेलना, आटा, अनाज, राख, मिट्टी आदि मे मुट्ठी भरना और फेकना छिपकर 'ता' करना, आटे-बाटे दही चटाके, तालिया बजाना, कुत्ते, बिल्ली आदि को नोचना तथा उनसे खेलना भी अच्छा लगता है। मिट्टी मे खेलना बुरा नही अपितु स्वास्थ्य-वर्द्धक है, परंतु खेद है कि हम लोगो के घरों मे अथवा उनके आस-पास गंदी मिट्टी रहती है। यदि हम घरों में एक छोटा सा गड्ढा खुदवाकर उसमे थोड़ा-सा रेत या स्वच्छ मिट्टी बच्चों के खेलने के लिए भरवा दें तो अच्छा है। इसके अतिरिक्त इस समय हम उन्हें रबड के छोटे नरम फुटबाल भी दे सकते हैं, जिससे उनकी अंगुलियो द्वारा दबाने तथा फेकने की जिज्ञासा शात हो सकती है। इसके अतिरिक्त इस समय बालक के अनुकरणात्मक खेलो की संख्या भी बढ़ जाती है। वह प्रायः किसी वस्तु को सिर पर रखकर दही बेचना, पुस्तक खोलकर आ-आ, दो-तीन आदि कहकर पढ़ने की नकल करना, कहारी की भॉति मिट्टी से बर्तन मॉजना और धोना, चलनी लेकर अपनी माता की भॉति आटा छानना, चाकू पा जाने पर तरकारी बनारना, कघा पा जाने पर सिर मे तेल की जगह पानी लगाकर बाल सवारना, माता अथवा धाय की भॉति अपने छोटे भाई बहन आदि को प्यार करने, गोद मे लेने, दूध पिलाने आदि की चेष्टा करना, साबुन पा जाने पर मुॅह धोने की नकल करना, अपने पिता बड़े भाई आदि को सिगरेट पीते देखकर दिया सलाई की सीक आदि मुॅह मे देकर सिगरेट पीने की नकल करना, माता-पिता को कान कुरेदते देखकर दियासलाई पा जाने पर कान कुरेदने की नकल करना, जूता पैर मे डालकर जूता पहनने की नकल करना, चारों हाथों पैरों के बल खड़े होकर घोड़ा बनना झाड़ू देना माता-पिता की भाँति 'कलूजा ( खरबूजा ) ऐ अथवा केवल ऍ-ऍ' करके सौदा-

सुलफ अथवा फेरी वाले को बुलाना, सीने की मशीन पा जाने पर मशीन चलाना, कैंची पा जाने पर कपड़ा कतरना, पानी से तख्ती धोना, दियासलाई से लैम्प जलाना, इत्यादि अनुकरणात्मक खेल भी खेलने लगता है। इस समय बालक की दशा ठीक उस बंदर की तरह होती है जो किसी को हजामत करते देखकर उसका शीशा तथा उस्तरा पा जाने पर हजामत करने की नकल करने की धुन मे अपना मुख क्षत कर लेता है। अतः माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे इस समय बालक के सामने ठीक वही काम करें जिनका नकल करना उसके लिए हानि कारक न हो। इनके अतिरिक्त वह कभी-कभी माता-पिता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए झूठा रोना भी रोया करता है और चाहता है कि वे उसे गोद म घर के बाहर ले जाय।

२ वर्ष के पश्चात् बालक को चलते-फिरते खिलौने, जैसे टीन की रेल, गेद, लकड़ी की गाड़ी आदि भी अच्छे लगते हैं और पैसे, शीशे अथवा पत्थर की गोली आदि लुढ़काना और साइकिल का पैडिल घुमा कर चेन चलाना भी रुचिकर प्रतीत होता है।

लग भग ३ वर्ष की आयु मे बालक भली भाँति चलने फिरने लगता है, घर के भीतर-बाहर आने जाने लगता है और उसे माता-पिता, धाय आदि वयस्क व्यक्तियों के स्थान मे समवयस्क बच्चे मिलने लगते हैं, अतः माता-पिता के प्रति उसका पूर्ववत् प्रेम नहीं रहता अर्थात् अब उसमें माता-पिता के साथ रहने तथा खेलने और उनको अपनी बातों तथा क्रियाओं पर खुश होते देखकर प्रसन्न होने की प्रवृत्ति कम होने लगती है। इस समय अन्य बच्चों के साथ अथवा स्वान्तःसुखाय अकेले खेलने मे अधिक आनंद आता है। अतएव इस समय उसे लगड लड़ाने, लंगड़ ऊँची जगह से लटकाने, मिट्टी का घोड़ा या ईंट चीर से बाँधकर घसीटने, डडे से गिल्ली पीटने, गेंद या गोली लुढ़काने तथा फेंकने, ईंटे एकत्रित करने, लकड़ी आदि से खेलने तथा सीटी बाजा आदि बजाने में आनंद

आता है। वह पुस्तक मे चित्र देख कर भी बड़ा प्रसन्न होता है और किसी को भुजउआ ( बन्दर ), किसी को बल्ली ( बिल्ली ), किसी को तुत्ता ( कुत्ता ) आदि बताया करता है। इसके अतिरिक्त इस समय उसके अनुकरणात्मक खेलो का रूप भी कुछ उन्नत हो जाता है और वह घर के बाहर के मनुष्यो तथा वस्तुओ की भी नकल करने लगता है। उदाहरणार्थ वह सौदा सुलफ बेचने वालां की तरह 'आजाओ मुनुआ, कालो ( खा्लो ) मुनुआ' आदि आवाज लगा कर सौदा बेचने की नकल करता है, ईटे, फूल, पत्ते आदि बिछा कर दूकान लगाने की नकल करता है, लठियों आदि से घर बनाता है, ठीकड़ी चाक आदि से लकीर खीचकर अथवा ईटे, फूल, पत्थर आदि एक पक्ति मे रख कर, रेल बना कर उसमे अपने भाई बहन को बिठाया करता है, लकीरें खीचकर लिखने की नकल करता है, तख्ते के टुक्डे को पत्तों आदि से पोत कर तख्ती पोतने, ईटो पर फूल डाल कर और फूल बिछाकर शिवजी का शृङ्गार करने, पुस्तक खोलकर आ–आ-, ईई--आदि कह कर पढने, ईंट से कील ठोक कर बढई बनने, साइकिल के फ्रेम पर बैठकर साइकिल पर चढ़ने इत्यादि की नकल किया करता है।

४-५ वर्ष की अवस्था मे बालक लकडी, डडा, अंगड-खगड, खेल-खिलौने आदि एकत्रित कर लेता है और इस क्रीडा-स्थान मे उनसे घटो अकेला खेलता रहता है । इस समय उसकी अनुकरणात्मक प्रवृत्ति अधिक प्रबल हो जाती है और उसके अनुकरणात्मक काल्पनिक खेल उन्नति-शिखर पर पहुँच जाते हैं, जिनका आगे वर्णन किया जायगा। इसके अतिरिक्त इस आयु मे प्रायः बच्चे एक दूसरे के कान पकड कर 'चियाऊँ-मियाऊँ' मुट्ठी बद कर के 'बाबा-बाबा आम लाओ' हाथ पर हाथ रख कर 'बाबा-बाबा पंखी लाओ' अंगुली पर अगुली तिरछी रख 'बाबा-बाबा कैंची लाओ' कमर झुकाकर चलकर 'बुढ़िया-बुढ़िया क्या ढूँढे ?' इत्यादि खेल भी खेलने लगते हैं। इस समय बालक मे ममत्व की भावना भी जाग्रत

हो जाती है और वह अपने भाई-बहन, खिलौने, पैसे, कपड़े आदि पर अपना स्वत्व समझने लगता है और उन्हें किसी दूसरे को नहीं लेने देता। यही कारण है कि वह प्रायः अपने खेल-खिलौनो को छिपा कर रखने लगता है जिससे उन्हे कोई ले न ले और यदि कोई उसके खेल खिलौना ले लेता है, तो बहुत रोता-पीटता है। माता-पिता को अपने व्यवहार द्वारा अथवा अन्य किसी तरह यह विश्वास दिला देना चाहिए कि उसके खेल-खिलौने कोई न लेगा इसके अतिरिक्त यदि उसे अपने खेल-खिलौने रखने तथा स्वच्छदता पूर्व खेलने-कूदने लिए एक पृथक क्रीडा-स्थान दे दिया जाय तो बड़ा अच्छा है।

## ४-५ वर्ष से ६ वर्ष तक

४-५ वर्ष की आयु मे बच्चा भली-भॉति चलने फिरने लगता है और बाहर-भीतर आने जाने लगता है। अतः उसे प्रौढों के कार्यों को देखने का अधिक अवसर मिलता है। चूॅकि बच्चे में अनुकरण की शक्ति बहुत जबरदस्त होती है, अतः वह अपने खेलो मे बड़ों की नकल करना प्रारभ कर देता है। इस समय लड़कियो को यदि गुड्डे-गुड़िएँ मिल जॉय, तो वे उनकी मॉ बन जाती हैं और उन्हें दूध पिलाती हैं, पुचकारती हैं, उनका प्यार लेती हैं, उन्हे गीत लोरियॉ आदि सुनाकर सुलाती हैं, पालने में झुलाती हैं, उनका विवाह करती हैं, दावत करती हैं, लड़को को यदि रेल अथवा हवाई जहाज का खिलोना मिल जाय, तो वे तुरत ही उसके ड्राइवर बन जाते हैं और फक-फक करके रेल अथवा घर्र-घर्र करके जहाज चलाना प्रारभ कर देते हैं। इस प्रकार के काल्पनिक खेल तथा नाटक खेलने की प्रवृत्ति प्रायः ५ तथा ७ वर्ष के बीच बहुत प्रबल होती है। ६-७ वर्ष की अवस्था मे जब बालक स्कूल तथा बाजार आने जाने लगता है, तो वह प्रायः घटों लोहार को भट्टी फूॅकते, दुकानदारो को सोदा तोलते, फेरी वालो को सौदा-सुलफ बेचते, डाक्टर को रोगी को देखते, मास्टर को पढाते, बाजीगर को तमाशा करते,

नट को कला दिखाते, सपेरे को साँप दिखाते, बदर वाले को बदर और रीछ नचाते, अथवा कारीगर को मकान बनाते, इस लगन के साथ देखता रहता है, मानों कि वह संसार के अनुभवो का ज्ञान अभी ही प्राप्त कर लेगा। इतना ही नहीं, वह घर आने पर उनका अभिनय भी करता है और कभी काठ की तलवार लेकर राम से लडता है, तो कभी तीर कमान लेकर रावण का शरीर छेदता है; कभी नकली पिस्तौल लेकर पहरा देता है, तो कभी चोर की भाँति पकड़ा जाता है; कभी पुरानी चिट्ठियाँ अथवा कागज लेकर डाक बाँटता है, तो कभी पोस्टमास्टर बन कर खत बेचता है; कभी डाक्टर बन कर रोगी को दवा देता है, तो कभी रोगी बन कर कराहता है। इस समय उसे पशु-पक्षियों की कहानियाँ सुनने मे भी अत्यत आनद आता है और वह उनको भी अपने खेलों मे खेलने की चेष्टा करता है।

लगभग ७ वर्ष की आयु तक बच्चे की कल्पना-शक्ति इतनी प्रबल होती है कि उसको काल्पनिक तथा वास्तविक जगत मे कोई भेद प्रतीत नहीं होता, हम जिसे नकली और झूठ समझते हैं, वह उसे असली और सच समझता है। जिस समय वह डडे को दोनो टागों के बीच मे दबाकर घोड़ा-घोड़ा खेलता है और उसे कम्मच से मारता हुआ भागता है अथवा पुचकार कर रोकता है, उस समय वह यह भूल जाता है कि वह डडे से खेल रहा है, असली घोड़े से नही। यही कारण है कि कभी-कभी वह यह कहता हुआ पाया जाता है कि 'मेरा घोडा आज सब से आगे निकल गया, मेरा घोड़ा गिर गया, मै घोड़े पर घूम कर आरहा हूँ, इत्यादि।' इतना ही नहीं, अपितु कभी-कभी तो यदि कोई उसकी आज्ञा का पालन नहीं करता है अथवा उसके खेल के कागज-पत्तर, फूल-पत्ते, ईंट-ककड़, आदि छू लेता है, तो वह लडने को तैयार हो जाता है अथवा कमजोर होने पर रोने-चिल्लाने लगता है अन्दर से माँ-बाप-भाई-बहन आदि को बुलाने लगता है। यही कारण है कि कागज अथवा दफ्ती के टुकड़ों से

रेल बाबू बनने वाला बालक बिना टिकट दिए जबरदस्ती दरवाजे के अंदर जाने वाले आदमी अथवा बालक से झगड़ा करने के लिए उतारू हो जाता है ककड़ो, पत्थरो, फूटे हुए घडे के ठीकरों, फूल-पत्तों आदि की दुकान लगाने वाला बालक किसी व्यक्ति के किसी वस्तु को छू अथवा ले लेने पर चिल्ला कर कहने लगता है, 'अम्मा, अमुक आदमी हमारी दुकान लूटे लिए जाता है।'

इस प्रकार बालक एक काल्पनिक जगत् की सृष्टि करता है, जिसमे वास्तविकता लेश मात्र भी नहीं होती। बालक के और हमारे काल्पनिक संसार मे भेद केवल इतना होता है कि हम वास्तविक तथा काल्पनिक जगत् के भेद को समझते हैं और बालक अपने काल्पनिक जगत् को ही वास्तविक समझ बैठता है। वह अपनी खयाली दुनिया में इतना मग्न हो जाता है कि उसे बाह्य जगत् की तनिक भी सुधि नही रहती। हम उसके खेलों को केवल खेल समझते है और जो कुछ वह कहता सुनता है उसे झूठ समझते हैं। परतु वह उनको वास्तविक समझता है और उनमे सच्चे आनन्द का अनुभव करता है। अतः उसके इस समय के खेल आत्मानन्द तथा आत्म तुष्टि के लिए होते है, दूसरो को दिखाने अथवा प्रसन्न करने के लिए नहीं होते। यही कारण है कि प्रायः हम देखते हैं कि कभी-कभी बालक घटो अकेला खेलता रहता है और कभी काठ-किवाड़, मिट्टी आदि से मन्दिर-मसजिद आदि बनाता है, कभी रेत मे पैर डाल कर भाड़ बनाता है, कभी घटा लेकर ठाकुरो की पूजा करता है और कभी मु ह से सीटी लगाते हुए फक-फक अथवा छिक-छिक करके इधर-उधर भागकर रेल का इ जिन बनने का प्रयत्न करता है।

७ वर्ष के पश्चात् कल्पना की बाढ कम हो जाती है और बालको मे आत्म-प्रदर्शन की शक्ति बढने लगती है। आत्म-प्रदर्शन में अपनी योग्यता तथा व्यक्तित्व दूसरो को दिखाने और उन पर अपना प्रभाव जमाने के लिए अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति नितात आवश्यक है। अतः एकात मे

खेले जाने वाले काल्पनिक खेलो से उसका मन हटने लगता है और वह घरके बाहर मैदान मे जाकर कूद-फाद, दौड़-धूप वाले वैयक्तिक खेल जैसे आँख-मिचोनी, रस्सा-कसी, खो-खो, सिपाही मार कोड़ा, गिल्ली-डडा, गेद-बल्ला, कबड्डी, लट्टू नचाना, लंगड़ लड़ाना, पतग लूटना, गोली खेलना इत्यादि खेल खेलने लगता है। लगभग ८-९ वर्ष की आयु में वह फुटबाल, क्रिकेट, हाकी इत्यादि सामूहिक खेल भी खेलने लगता है। परतु वह इनको सामूहिक खेलो की भाति नही खेलता है अपितु वैयक्तिक खेलो की भाति ही खेलता है अर्थात् चूंकि अभी उसमे दल के प्रति भावना जाग्रत नही होती है, वह तो केवल होड़ा-होड़ी अथवा प्रतिद्वदिता द्वारा दूसरो पर अपना प्रभाव जमाना भर चाहता है, अतः वह फुटबाल केवल किक मारने के लिए, क्रिकेट शाट लगाने के लिए, हाकी हिट लगाने के लिए खेलता है, दल की हार जीत के लिए नही। खेलते समय उसके मनमे अपने दल के हारने-जीतने की चिता नही होती, चिता केवल अपना महत्व दिखाने की होती है। यही कारण है वह मिलकर खेलने की अपेक्षा विरुद्ध खेलना अधिक अच्छा समझता है। ९ वर्ष की अवस्था समाप्त होने पर उसका जीवन दलबद्ध होने लगता है और खेलते समय उसे आत्म-प्रदर्शन की अपेक्षा अपने दल की हार-जीत का अधिक ध्यान रखना पडता है। अत: उसके खेल सामूहिक तथा दलबद्ध हो जाते हे।

साराश यह है कि ४ से ७ वर्ष तक बालकों मे कल्पना-शक्ति अधिक प्रबल होती है और वे एकात में अनुकरणात्मक तथा काल्पनिक खेल खेलते हैं, तत्पश्चात् लगभग ९ वर्ष तक उनमे आत्म-प्रदर्शन की शक्ति अधिक प्रबल रहती है और वे दूसरों के सम्मुख खुले मैदान मे भाग-दौड़ वाले खेल खेलते है। अधिकाश माता-पिता काल्पनिक खेलो का महत्व नही समझते और उन्हे बेकार-सा समझते हैं। यही कारण है कि कभी-कभी जब कि बालक कोई नाटक खेल रहा होता है और अपनी खयाली दुनियाँ मे इतना मग्न होता है कि माता-पिता के बुलाने पर भी वह उनकी

कुछ नहीं सुनता, तो वे उसे मारने-पीटने लगते हैं और पढ़ने-लिखने अथवा घर का अन्य काम धंधा करने के लिए बाध्य करते हैं। यह ठीक नहीं। बालक के लिए काल्पनिक खेलों का वही महत्त्व है, जो हमारे लिए हमारी खयाली दुनियाँ का है। जिस प्रकार हम अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति दिवास्वप्नों के रूप में हवाई घोड़े पर बैठकर कल्पना की उड़ान लगाकर कर लेते हैं और अपने मन को शांत कर लेते हैं, ठीक उसी प्रकार बालक भी यद्यपि प्रौढ़ों के-से कार्य नहीं कर सकता, तथापि वह अपनी इच्छाओं की पूर्ति अनुकरणात्मक काल्पनिक खेलों द्वारा करके आत्म-तुष्टि कर लेता है। इसके अतिरिक्त वे इस प्रकार के काल्पनिक खेलों द्वारा वास्तविक जीवन से भी परिचित हो जाते हैं। अतः इस समय माता-पिता तथा शिक्षक को चाहिए कि वे उक्त प्रकार के काल्पनिक खेलों के लिए आवश्यक साधन जुटाएँ और ऐसा वातावरण उत्पन्न करें कि बालकों के खेलों में सदैव नवीनता रहे और उनका मन न ऊबे, उन्हें पशु-पक्षियों परियों आदि की सुन्दर-सुन्दर कहानियाँ सुनाएँ, अभिनयात्मक पाठों का अभिनय कराएँ और उनसे विभिन्न पार्ट खिलवाएँ। इससे बालकों की गति, स्फूर्ति तथा रचनात्मकता प्रवृत्ति बढ़ती है। प्रायः देखा गया है कि जो बालक इस प्रकार के काल्पनिक खेलों में दक्ष होते हैं, वे भविष्य जीवन के लिए तैयार हो जाते हैं और आगे चल कर बड़े प्रवीण तथा कार्य-कुशल निकलते हैं। यहा एक बात याद रखनी चाहिए कि ७ वर्ष के पश्चात् भी बालक का काल्पनिक जगत् में विचरते रहना और उसे वास्तविक जगत् का ज्ञान न होना ठीक नहीं है। इस प्रवृत्ति के अधिक समय तक चलते रहने से प्रायः बालकों में खयाली पुलाव पकाने की आदत पड़ जाती है और वे आगे चल कर झूठ बोलना, गप्प उड़ाना, मिथ्या अहंकार करना इत्यादि भी सीख जाते हैं। अतः माता-पिता तथा शिक्षकों को चाहिए कि वे बालकों से बात-चीत करके उनकी आंतरिक इच्छाओं का ज्ञान प्राप्त करें और उनके काल्पनिक खेलों के साथ वास्तविक व्यापारों का सम्मिश्रण करके उन्हें वास्तविकता की ओर सञ्चालित

कर दे। यदि किसी प्रकार दिवास्वप्न देखने की आदत पड ही जाय, तो उसको साहित्यिक रूप देकर बालक को कहानी, उपन्यास, कविता आदि की ओर प्रवृत्त कर देना चाहिए, जिससे कि वह भविष्य मे अच्छा कहानी अथवा उपन्यास-लेखक या कवि बन सके।

## ६ से १५ वर्ष तक

लगभग ६ वर्ष की आयु तक अपनी धुन मे मस्त रहने और काल्पनिक खेल खेलने की प्रवृत्ति पूर्णतः छूट जाती है। अब लड़को को स्वाग अथवा नाटक-रचना और लड़कियो को गुड्डे-गुडिएँ खेलना रुचिकर प्रतीत नहीं होता। १०-१२ वर्ष की आयु मे बच्चो मे आत्म-प्रदर्शन की शक्ति अत्यत प्रबल होती है। अतः इस समय उनमे अनेकों नवीन रुचिया तथा प्रवृत्तिया दिखाई देती हैं। इस आयु मे लड़के चकई नचाना, गुलेल चलाना, पतग उड़ाना, सियार मार डंडा, लगड़ी टोली, साँप-नेउला, गिल्ली डडा, अधा-भैसा, दिल्ली हमारी, गो होम, चिरमिर घोडी, कबड्डी अथवा ढूडुआ, इत्यादि और लडकिया पचगुट्टे, लुका-लुकउअल, ऊचा-नीचा गिलास, अंटी, हप्पीमार टीलो, रस्सी कूद, लंगड़ी बत्तख, लूपलाइन छुड्डी, इत्यादि खेल खेलते हैं। इस आयु मे विभिन्न वस्तुएँ तथा खिलौने बनाने मे बच्चों को बडा आनद आता है और वे लकड़ी के टुकडों से मदिर मस्जिद, टूटे हुए घड़े के ठीकरों से गिप्पल, गीली मिट्टी से चक्की चूल्हा, हाथी-घोड़ा आदि खिलौने, गीले आटे से चूहा, चिड़िया रुमाल आदि रेते मे पैर डालकर माड़, कागज से दिन-रात पटाका, फूल, टोपी, गुब्बारा तथा, चूडी के टुकडो से हार, कडील आदि और मोतियो से माला, अगूठी आदि, गुड़िया के गहने, इत्यादि बनाया करती हैं। कुछ बालको मे इस समय विभिन्न प्रकार के चित्र, टिकट ककड़-पत्थर, पुराने तथा आजकल के मे अधन्ने तथा छेकदार पैसे और पुराने खत इत्यादि जोडने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। कोई-कोई बालक फूल-पत्ते तथा कुत्ते-बिल्ली आदि के चित्र भी खींचा करते हैं। इस समय

बालकों में गाने या तुकबदी करने की रुचि भी उत्पन्न हो जाती है और वे अपनी-अपनी क्रीड़ाओं मे विभिन्न प्रकार की तुकबदियाँ किया करते हैं जैसे:—

(१) आँख मिचौनी अथवा टीलो मे चोर छाँटने के लिये कहते हैं—

अक्कड बक्कड़ बम्बे बौ, अस्सी नब्बे पूरे सौ।
सौ मे लगा तागा, चोर निकल के भागा॥

अथवा

पान फूल पत्ता, गुलाबी लाल कत्था।
कटोरे मे की आगी. बुझादे मेरी सागी॥

अथवा

ऐटी वेटी टेटी टेम, एलस पपड़ी इमली मेम॥

अथवा

ए बी सी डी, तू कहाँ गई थी?
माई डियर फादर, मै खेल रही थी।

(२) चोर से पानी मंगाने के लिए कहते हैं—

आती मार छाती। तुम ले आओ करोंदे की पानी॥

(३) किसी के दाव न देने पर कहते हैं—

चोर चोरी न दे, कउआ भून भून खाय।

(४) किसी बालक के विवश होकर कोई काम करने पर कहते हैं—

पाडे जी पछतायेगे, वही चने की खायेगे।

(५) कबड्डी के खेल मे साँस रोकने के लिए कहते हैं—

खेल कबड्डी आला है, बिन मूछ का बदर काला है।

अथवा

छैल कबड्डी आल ताल, मेरी मूछें लाल लाल।
मर गए बिहारी लाल, मौज उड़ावे बाके लाल॥

इस आयु में बालक पहेलियाँ भी पूछा करते हैं, जैसे—

(१) हरी हरी जमीन खुरखुरे काटे।
बताओ तो बताओ नही नाक कान काटे॥
(२) टेढ़ी मेढी लकड़ी जिसपर बैठा हाऊ।
बताओ तो बताओ नही तुम हो नाऊ॥
(३) मूली का सा कतला, दही का सा रग।
बताओ तो बताओ नहीं चलो हमारे संग॥
(४) पडितजी की पा लागन और लाला जी की जै।
बारह में से तीस निकल गये आगे बचे कै?
(५) एक सन्दूक मे बारह खाने।
बारह खानों मे तीस तीस दाने॥

इसके अतिरिक्त कभी कभी सादी पहेलिया भी पूछा करते हैं जैसे—अगर एक आदमी एक आँख से ३ चिड़िएँ देखता है, तो बताओ वह दो आँख से कितनी चिड़िए देखेगा? अगर एक आदमी १ गज कपड़ा रोज फाड़ता है, तो वह ८ गज कपड़ा कितने दिन मे फाडेगा? 'मेरा नाम 'मैं' और तेरा नाम 'तू' बताओ मैं पागल कि तू?' इत्यादि।

कभी-कभी वे तुकबन्दी करके एक दूसरे को बनाया भी करते है, जैसे एक बालक दूसरे से कहता है 'कहो, एक' और जब वह कहता है 'एक' तो दूसरा कहता है 'तू खडा खडा देख।' इसी प्रकार 'दो, तू सिर पकड़ कै रो' 'तीन, तू बजा बीन' 'चार, तू खा चूहे का अचार' 'बीस, तुम पूरे खबीस' 'चालिस, तू कर जूते पै पालिस' 'साठ, तेरे सिर पै खाट' 'पानी, तेरी सास कानी अथवा तू कर गैया की सानी' 'आलू मटर सेम, हम साहब तुम मेम' 'आलू मटर-गोभी, हम साहब तुम धोबी' इत्यादि।

कभी-कभी एक दूसरे को गा-गा कर चिढाया भी करते है जैसे—
(१) किसी बालक के खिसिया कर रोने लगने पर वे कहते हैं—

रोइया मुह धोइया, बिल्ली लाई आटा।
श्याम का मुह चाटा॥

अथवा

रूठा लड़का कौन मनाए। गरज पड़े तो दौड़ा आए।

अथवा

कल्लू मटल्लू बेर खा रहे थे। भंगन की टोकरी में सो रहे थे ॥
भंगन ने लात मारी रो रहे थे। भंगन ने पेडा दिया हंस रहे थे ॥

(२) नाम पर तुकबन्दी करके चिढ़ाते हैं—

बासी रोटी बासी दाल।
खा ले बेटा बाबूलाल ॥

अथवा

राधेश्याम तिलक धारी।
पकड़ चुटइया दे मारी ॥

अथवा

राम नरैना, इमली का टैना।
खुल गई खिड़की, उड़ गई मैना ॥

अथवा

भोला गरी का गोला।
घटाघर में टन टन बोला ॥
ऊपर से ठोस नीचे से पोला।

अथवा

छगा छः कौडी छदाम।
छगा मेरा ही गुलाम ॥

अथवा

काने राजा बड़े सिपाई।
आंख फोड़ बन्दूक चलाई ॥

अथवा

मोटे लाला पिलपिले।
चहू को लेके गिर पड़े ॥

अथवा

मुन्नी पापड भुन्नी, आधा पापड़ कच्चा ।
मुन्नी खाय चिडी का बच्चा ॥

अथवा

शान्ति मन मानती, कहना क्यो नही मानती ।
पडित जी पढाने आये, बस्ता क्यो नही बॉधती ॥

इसके अतिरिक्त कभी-कभी वे बालको के नाम भी रखा करते हैं जैसे दुबले-पतले लडके को सीकिया पहलवान, दुर्बल को हत्याहरन, काने को कनऊ राजा, लम्बे को ऊट, मोटे को कचौड़ीमल, गप्पू गोली, मोटी भैस, भोदूराम आदि कहा करते हैं। इसी प्रकार वे छुटकी, लपाको, छिपकली, गिरगिट आदि और भी अनेको नाम रखा करते हैं। नाम रखने मे तो वे उस्तादो तक को नही छोडते और किसी को मेढक, किसी को बाबा, किसी को भैसा, किसी को कामवढई, किसी को लकडबग्घा, किसी को कालिया मसान, किसी को कुल्हड इत्यादि कहा करते हैं।

१२ वा वर्ष समाप्त होते-होते बालक का मन उक्त बातों से भी हटने लगता है। इस समय उसके जीवन मे एक नवीन परिवर्तन होता है। अब वह अकेला नही रह सकता, किसी न किसी दल का सदस्य होकर रहना चाहता है। अब उसको अपनी उतनी चिता नही होती जितनी अपने दल की होती है। उसकी टीम हारे या जीते, परन्तु उसको प्रशसा हो, यह बात जाती रहती है। अब तो प्रत्येक समय यह चिंता लगी रहती है कि जिस तरह भी हो उसकी टीम जीते और नाम पैदा करे। अब वह फुटबाल किक लगाने के लिए, वालीबाल सर्विस करने के लिए, क्रिकेट शाट लगाने के लिए और हाकी हिट लगानेके लिए नही खेलता, अपितु अपनी टीम की जीत के लिए खेलता है। अत वह वैयक्तिक अर्थात् अकेले खेले जाने वाले खेल नही खेलता, अपितु सामूहिक अर्थात् टीम या गुट मे खेले जाने वाले खेल जैसे फुटबाल, क्रिकेट, बास्केटबाल,

हाकी, इत्यादि खेलता है और यदि खिलाडी कम होते हैं, तो वालीबाल, बैडमिंटन, डैकटैनिस, इत्यादि खेल खेलता है। यदि वह कभी अकेला रह जाता है, तो अपना अलग एक छोटा-सा गुट बना लेता है। इतना ही नहीं, अपितु वह अपने खेलों के लिए अच्छा-सा मैदान खोजने के लिए दूर-दूर तक जाया करता है। अतः इस समय बालकों मे घूमने की रुचि भी उत्पन्न होजाती है। साथ ही साथ चूकि वे अपने को अपने पैरा पर खडा होने के योग्य समझने लगते हैं और उनको घर या स्कूल के बन्धन मे रहना अच्छा नही लगता, अतः उनका मन सदैव यही चाहा करता है कि वे घर से चल दे और मन भर कर भ्रमण करें। यही कारण है कि इस आयु मे प्रायः बालक घर से भाग जाते हैं। इसी कारण उनको स्काउटिंग मे रहना और छुट्टी के दिन अपने संगी साथियों को जोड बटोरकर पिकनिक के लिए निकल जाना भी रुचिकर प्रतीत होता है। पिकनिक पर जाने के लिए साइकिल पर चढने की भी आवश्यकता होती है। अतः वे साइकिल पर चढना भी सीख जाते हैं; और नया-नया शौक होने के कारण दिन भर साइकिल पर चढ़े-चढे घूमा करते हैं। १२-१३ वर्ष की आयु मे पिकनिक, फुटबाल, क्रिकेट, हाकी आदि कठिन खेलों से थकने पर वे ऐसे खेल खेलते हैं जिनमे थकन भी न हो, और मनोंरजन भी होजाय जैसे लूडो, स्नेक एण्ड दा लैडर, कैरम, बीस वग्गी चार वाग, डमरू, ताश इत्यादि।

११-१२ वर्ष के बाद बालक लिंग-भेद को समझने लगते हैं और लड़को मे बडप्पन अथवा अभिमान और लडकियों में सकोच अथवा लजीलापन आने लगता है। अतः लडको को लडकियों के साथ खेलने मे तुच्छता और लडकियो को लड़कों के साथ खेलने में लज्जा प्रतीत होने लगती है। वे अपने भेद परस्पर एक दूसरे से गुप्त रखते हैं। अतः वे अपना अलग गुट बनाते हैं, लड़के लड़को के और लड़किया लड़कियो के। इन दलों में एक बालक लीडर अर्थात् नेता होता है और शेष सब उसकी आज्ञानुसार चलते हैं।

लगभग १४ वर्ष तक यह सब खेल, रुचिया तथा प्रवृत्तिया प्रबल रहती है, परन्तु १५ वा वर्ष लगते ही पुनः एक परिवर्तन होता है । अब बालक यह समझने लगता है कि वह बडा होगया है और उसे छोटे बच्चो मे खेलना रुचिकर प्रतीत नही होता । अब वह बच्चो की भाति अनियमित रूप से खेलना नही चाहता, अपितु प्रौढो के साथ नियमानुसार खेलना और क्लब मे बैठना-उठना चाहता है। अत. स्काउटिग से उसका मन हटने लगता है । बड़ी टीमों मे हाकी, वास्केटबाल, क्रिकेट, फुटबाल, आदि खेलना भी अच्छा लगता है, परन्तु बच्चो की छोटी टीमो मे नही । लडकियो को भी इस आयु मे छोटी लडकियों के साथ पचगुट्टे, अष्टचदा या आखमिचौनी खेलना अच्छा नही लगता, अपितु घर का काम धधा सीना-पिरोना, काढना-कूढना, आदि अच्छा लगता है । चूंकि इस शरीर में शक्ति अधिक होती है, अतः कुछ लडको मे अखाडेबाजी की रुचि भी उत्पन्न होजाती है ।

साराश यह है कि १०-१२ वर्ष की आयु मे बच्चो मे विभिन्न प्रकार के खेल खिलौने बनाने, वस्तुए एकत्रित करने, तुकबन्दी करने, पहेलिया बुझाने, और दूसरो को बनाने, चिढाने तथा नाम रखने की प्रवृत्तिया विशेष रूप मे पाई जाती हैं । बालकों की इन नैसर्गिक प्रवृत्तियों का हमें उचित उपयोग करना चाहिए और उन्हे उन्नत करना चाहिए, कारण कि इनसे आगे चलकर जीवन मे बडी सहायता मिलती है । खेल खिलौने बनाने की प्रवृत्ति को हम बालको से कागज के छीके, कडील, नाव जहाज, जंजीर, कमरख, फिरकी, वैदरकाक बेल आदि दियासलाई के डिब्बियों की गाडी, रेल, घर आदि, सिगरेट की डिब्बियो के हार, बेल, मनीवेग आदि, लकडी के डिब्बे, रूल, फिटे, कलमदान, आदि, चूडी की टुकडो से दूर्बीन, शीशे की नलियों और मोतियों से झाड फानूस, दफ्ती से घर, रेल, नाव आदि, सीपियों से तसवीरें, रुई से कुत्ता बिल्ली आदि पशुओं के चित्र और सांको अथवा तीलियो से पखे, नलकों से पपय्ये और रग की पेसिलो से भाति भाति की ड्राइग, बनवाकर, बाग में पेड पौधे

लगवा कर और लड़कियों से भाति भाति की वस्तुए कढ़वा कर उन्नत कर सकते हैं। वस्तुए एकत्रित करने की प्रवृत्ति द्वारा हम बालकों से पुराने टिकट, फूल पत्तिया, पत्र, चित्र, कविताए इत्यादि एकत्रित कराकर लाभ उठा सकते हैं। ऐसा करने से बालकों की जाग्रफी, हिस्ट्री, नेचर स्टडी, इत्यादि मे ज्ञान-वृद्धि होती है। पहेलिया बुझाने की प्रवृत्ति से गणित के प्रश्नो मे बड़ी सहायता मिलती है। यू शुष्क प्रश्नो मे बालकों का मन नही लगता, परन्तु जब वे पहेली के रूप में उनके सामने आते हैं, तो बड़े रुचिकर प्रतीत होते है। इसके अतिरिक्त हम उनको भाति भाति के गुर, अलकार, कठिन नाम, इत्यादि भी कविता मे बाधकर सरलता से स्मरण करा सकते हैं। बालकों को गाना सिखाने का भी यही समय है। लगभग १२ वर्ष की आयु में बालक दलबद्ध होकर गुट बनाने लगते हैं। इस समय उनकी सोसाइटी की ओर ध्यान रखना चाहिए, कारण कि इस आयु में प्रायः बालक कुसग मे पड़कर द्यूतक्रीडा आदि करने लगते है। इस दलबद्धता की प्रवृत्ति द्वारा उनको किसी दल अथवा क्लब का सदस्य बनाकर उनसे मेले-ठेलों में समाज-सेवा आदि अच्छे-अच्छे कार्य कराये जा सकते हैं। इन दलों के विषय मे यह ध्यान रखना अत्य त आवश्यक है कि १३-१४ वर्ष के पश्चात् किसी भी दल मे बालक तथा बालिकाए दोनो एक साथ न होने चाहिए, अन्यथा प्रेम घटनाए होजाने का डर है। १५ वर्ष की आयु मे बालकों मे यौवन की नवीन उमंग होती है, अतः उन्हे लाठी चलाना, गदका खेलना, मुग्दर घुमाना, कुश्ती लड़ना, तैरना आदि सिखाने चाहिए और पुटिंग दी वेट (Putting the weight) डिस्कस थ्रो (Discus throw) लम्बी दौड़, ऊची कूद आदि खेल खिलाने चाहिए। १५-१६ वर्ष के पश्चात् बालक अपने को बड़ा समझने लगते हैं और उन्हे बच्चों की भाति खेलना कूदना अच्छा नही लगता। लड़किया भी इस समय विवाहित कर घर-बार की हो जाती हैं। लड़के भी अपना उत्तरदायित्व समझने लगते हैं।

१०

# झूठ बोलना

वास्तव मे झूठ कोई अपराध नही है, अपितु किसी अपराध को छिपाने के लिए काम मे लाया जाता ह। झूठ प्रत्येक आदमी नही बोलता। झूठ केवल वही आदमी बोलते है जिनकी कल्पना-शक्ति प्रबल होती है और साथ ही साथ जिनकी जुबान मे भी तजी होती है अर्थात् जिनकी जुबान से शब्द बहुत सरलता तथा स्फूर्ति के साथ निकलते हैं।

चूंकि विविध अपराधों के छिपाने मे सहायक होता है, अतः उसके बोलने का कारण भी सदैव एक ही नही होता। झूठ अनेक कारणो से बोला जाता है और तदनुसार विभिन्न प्रकार का होता है। साधारणतः झूठ निम्न प्रकार के होते हैं—

(१) खेल का झूठ—प्रायः ३ से ५ साल की उमर तक बालक अनेक प्रकार के काल्पनिक खेल खेला करते हैं। कभी एक छोटे से डण्डे को दोनो जाघों के बीच मे दबाकर घोड़े पर सवारी करते हैं और कभी उसी छड़ी से कुर्सी रूपी घोडे को मार-मार कर कचूमर निकालते हैं, कभी वे कहते हैं कि 'आज हमारा घोड़ा गिर गया।' हम लोगों को यह सब झूठ मालूम होता है, लेकिन वास्तव में बात यह है कि बच्चो की कल्पना-शक्ति बहुत प्रबल होती है और वे वास्तविक दुनिया से अलग अपनी एक काल्पनिक दुनिया मे रहते हैं। जिस प्रकार हम इस दुनिया मे पूर्ण न होने वाली इच्छाओ को दिवा-स्वप्न के रूप मे पूर्ण करते है, ठीक उसी प्रकार बच्चे अपनी वास्तविक दुनिया में पूर्ण न होने वाली इच्छाओं को काल्पनिक क्रीड़ाओं द्वारा पूर्ण करते हैं। एक उदाहरण से यह विषय

स्पष्ट हो जायगा। मान लो कोई गरीब आदमी हिन्दुस्तान का बादशाह होना चाहता है, तो वह वास्तविक जीवन मे इस पद पर नहीं पहुंच सकता, लेकिन दिवा-स्वप्न के रूप में हिन्दुस्तान का ही नही अपितु दुनिया भर का बादशाह बन सकता है। इसी प्रकार यदि बालक डाक्टर बनकर रोगी को देखना, हलवाई बनकर दुकान लगाना, दही आदि बेचना चाहता है, तो अपने काल्पनिक खेलो द्वारा सरलता से रोगी को दवा दे सकता है, ककड-पत्थर द्वारा मिठाई बेच सकता है और किसी भी वस्तु को सिर पर रखकर दही बेच सकता है। छोटे बच्चों को इस प्रकार के खेलो तथा झूठ में प्रोत्साहन देना चाहिए, जिससे उनकी अपूर्ण इच्छाओं की पूर्ति और कल्पना-शक्ति का पूर्ण विकास हो सके।

वह झूठ भी जो हसी मजाक में बोले जाते हैं, इसी प्रकार के झूठ के अन्तर्गत हैं। ये झूठ केवल खेल या हसी-दिल्लगी भर के लिए होते हैं और थोड़ी देर बाद हसी-दिल्लगी समाप्त होते ही प्रकट हो जाते हैं और मान लिए जाते हैं।

( २ ) **छोटे बच्चो का नासमझी का झूठ**--छोटे बच्चे सत्य और कल्पना के भेद को नही समझते। उन पर आदेश (Suggestion) का प्रभाव भी शीघ्र पड़ता है और वे दूसरों के कहने मे बड़ी जल्दी आ जाते हैं, जो दूसरे कहते हैं वे उसे सत्य समझ लेते हैं। फल यह होता है कि वे वास्तविक सत्य अर्थात् प्रत्यक्ष अनुभवो को अपने काल्पनिक सत्य अर्थात् सोची हुई बाता तथा दूसरों द्वारा कही हुई बातों के साथ गडबड़ करके मिला देते हैं। प्राय: ऐसा होता है कि जब वे किसी बात को भूल जाते हैं अथवा उन्हे ज्ञान नही होता है और तुम उनसे उसके विषय मे पूछो, तो कोई फबता हुआ उत्तर दे देते हैं; लेकिन इसके मानी यह नही है कि वे आपको धोखा देना चाहते हैं अथवा आपसे झूठ बोलते हैं। वास्तव मे बात यह है कि उन्हे इसका ज्ञान ही नही होता कि वे झूठ बोल रहे हैं, कारण कि वे सत्य और कल्पना मे भेद न कर

पाने के कारण उसी को सत्य समझते है। प्रायः वे बच्चे जो बड़े संकोची होते हैं, बोलने मे घबरा जाते हैं और कुछ का कुछ कह जाते हैं। ऐसी दशा में यदि उन पर झूठ का दोष लगाया जायगा, तो वे घबरा कर और भी अधिक गड़बड़ा जायेगे। अतः बच्चों के इस प्रकार के काल्पनिक तथा आकस्मिक असत्यों तथा विचारो को क्षम्य समझना चाहिए और ऐसे अवसर पर वास्तविक सत्य की खोज करके उनके साथ बर्ताव करना चाहिए।

( ३ ) **शेखी मारना**--बहुत से बच्चों मे आत्म प्रदर्शन-अर्थात् अपने को दिखाने की आदत होती है और वे अपनी बातो से दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं अतः वे प्रत्येक बात को बहुत कुछ घटा बढ़ा कर और रँगकर कहते हैं। यद्यपि उनका अभिप्राय झूठ बोलने का नहीं होता, वे केवल अपनी बात को सजाकर और उसमें नमक मिर्च मिला कर कहना चाहते हैं। अतः उनकी बातों मे कुछ मात्रा मे झूठ सदैव मिला रहता है। इस प्रकार के बच्चे प्रायः बड़ाई की डींगें मारा करते हैं और अपने विषय मे अनेकों मनोरंजक कहानिया सुनाया करते हैं। वे प्रायः दिवा-स्वप्न देखा करते हैं और बहुत वहमी हो जाते हैं। उन्हे प्रायः यह बहम रहता है कि प्रत्येक आदमी उनका शत्रु है और उनके विरुद्ध षडयन्त्र रच रहा है, अतः वे झूठी-सच्ची व्यर्थ की शिकायतें भी किया करते हैं। जो बच्चे यह चाहते हैं कि सबका ध्यान उनकी ओर आकर्षित रहे, आगे चल कर प्रायः न्यूराटिक ( Neuratic ) के दौरे हो जाते हैं और तनिक-सी बात मे घबड़ा और गड़बड़ा जाते हैं और उनको हिस्टीरिया ( Hysteria ) के दौरे पड़ने लगते हैं।

( ४ ) **द्वेषपूर्ण झूठ**—कुछ बालक दूसरो को नीचा दिखाने अथवा उनसे बदला लेने के लिए झूठ बोला करते हैं। इस प्रकार का झूठ प्रायः उन्ही बालकों के साथ बोला जाता है जिनसे हमारा अत्यन्त निकट का अथवा घनिष्ठ सबंध होता है। यदि किसी कारण से एक बालक दूसरे

से मन ही मन जलने लगता है, तो वह प्रायः उस पर विविध दोष लगाया करता है। इस प्रकार के बालक शत्रुता अथवा द्वेष के कारण घृणित से घृणित दोष लगाने तक से नहीं चूकते।

( ५ ) **बहानेबाजी**—जब बालक कोई अपराध अथवा कोई ऐसा कार्य करता है जिसमें उस पर दोष लगे अथवा वह दिया हुआ काम नहीं कर पाता है या नहीं करना चाहता है; तो वह बहाने बाजी और टालमटूल करता है अर्थात् जानबूझ कर झूठ बोलता है। इस प्रकार के झूठ प्रायः झूठे वायदे अथवा इन्कार का रूप धारण करते हे। वे बालक जो चोरी तथा अन्य प्रकार के अपराध करने के आदी हो जाते हैं, प्रायः अपने अपराधों को छिपाने के लिए इस प्रकार के झूठ बोला करते हैं। कभी-कभी स्कूल आदि मे देर से पहुचने पर, काम करना भूल जाने पर अथवा कोई हानि आदि कर देने पर भी वे इन्कार किया करते हैं, अपना दोष दूसरों पर लगाया करते हैं और इस प्रकार के झूठ बोला करते हैं। ऐसे बालक प्रायः डर के मारे अपने दोषो तथा अपराधों को छिपाना चाहते हैं, अतः वे इन्कार कर देते हैं अथवा दूसरों को अपराधी बना देते हैं। मेरा निजी अनुभव है कि शीशा आदि किसी चीज के तोड़ डालने, किताब फाड डालने, कापी में उल्टो सीधी लकीर खीच डालने पर प्रायः बच्चे पूछने पर साफ इन्कार कर देते हैं। वे प्रायः कहते हैं "बाबू मैंने नहीं तोड़ा है, श्याम (अन्य भाई बहिन आदि) ने तोड़ा है" या 'बाबू, मेंने नही तोड़ा है आप ही गिर पड़ा था।"

(६) **स्वार्थवश झूठ बोलना**—कभी-कभी बालक निकट भविष्य मे कोई लाभ अथवा आनन्द उठाने के लिए भी झूठ बोला करते हैं। खेल मे बालकों का झूठ बोलना और बेईमानी करना, पढने मे सबक आदि याद न करने या घर का काम करके न लाने पर बहानेबाजी करना साधारण सी बात है। कभी-कभी बालक कोई ऐसा कार्य, जिसे मा, बाप, टीचर आदि बड़े व्यक्ति ठीक न समझते हो, करने के लिए भी

झूठ बोला करते हैं। उदाहरणार्थ यदि बालक को सिनेमा जाना है या वह मिठाई खाना चाहता है और साथ ही साथ यह भी जानता है कि मा उसे इस काम के लिए पैसे नही देगी और डाटेगी, तो वह पड़ोसिन के यहा जाता है और कहता है 'अम्मा ने एक चवन्नी मागी है, तरकारी वाले को देनी है, शाम को बाबूजी आयेंगे, तो दे देगी।' बस इस प्रकार वह चार आने पैसे मार लेता है और सिनेमा चल देता है। कभी-कभी जब बालक घर की कोई चीज लेने जाते हैं, तो वे पैसों की मिठाई आदि खा आते हैं और घर पर आकर कह देते हैं कि पैसे कहीं गिर गए। फकीर लोग प्रायः इस प्रकार की प्रभावपूर्ण कहानिया रचकर भीख मागा करते हैं। कोई कहता है, "मुझे लड़की की शादी करनी है" कोई कहता है "मेरा घर बढ़िया मे बह गया" इत्यादि। इस प्रकार के बालक कहानिया गढ़ने मे बडे तेज होते हैं। कभी-कभी लोग अपने अफसरो को खुश करने के लिए भी उनकी झूठी प्रशसा और चापलूसी किया करते हैं। डेमाक्लीज ( Democles ) का अपने बादशाह की खुशामद और झूठी प्रशंसा करना प्रसिद्ध ही है।

( ७ ) **आलस्यवश झूठ**—कभी-कभी जब बालक अपने खेल मे मस्त होता है, उस समय यदि उससे कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह साफ इन्कार कर देता है, 'मुझे नही मालूम'। उदाहरणार्थ यदि तुम बालक से पूछो 'क्या तुम्हारे बाबू घर पर हैं?' तो वह चट से कह देता है 'मुझे नही मालूम।' इसके यह मानी नही हैं कि वास्तव मे बच्चे को मालूम नही है, वह जानता अवश्य है, परन्तु वह बताने का आलस्य करता है, उसे बताने की फुर्सत नही है, वह समझता है यह मेरे खेल मे दखल देने वाले कौन होते हैं? इन्हे मुझसे पूछने का क्या अधिकार है? अतः वह टाल देता है। ऐसा प्रायः हम लोग भी जब काम मे अधिक घिरे होते हैं, तो किसी के कोई बात पूछने पर जान-बूझ कर 'मुझे नहीं मालूम या मैं नहीं जानता' आदि कहकर टाल देते हैं।

( ८ ) झूठ का रोग अर्थात् अकारण झूठ--हिस्टीरिया, कोरिया, मिर्गी वहम आदि कुछ मानसिक रोगों मे प्राय. मनुष्य अकारण ही झूठ बोला करते हैं। इस प्रकार के झूठ की मुख्य पहचान यह है कि वे प्रायः महीनो और कभी-कभी वर्षों तक चला करते हैं। इस प्रकार के बालकों के निबन्धों मे भूल-चूक सबधी अशुद्धिया अधिक होती हैं और वे प्रत्यक्ष अनुभव शून्य होते हैं अर्थात् उनसे स्पष्टतः मालूम होता है कि बालक बहुत भुलक्कड़ है और उसकी अवलोकन शक्ति बहुत निर्बल है। इस प्रकार के बालक दूसरो के कहने मे बडी जल्दी आ जाते हैं और उनकी सूचनाएँ ( Reports ) विश्वसनीय नही होती। इस प्रकार के बालक प्रायः गुमनाम चिट्ठिया भेजा करते हैं और अपने सम्बन्धियो पर अनेक प्रकार के झूठे दोष लगाया करते है। ये दोष प्रायः काम-सम्बन्धी होते हैं। उदाहरणार्थ एक बार एक अविवाहित युवती ने पुलिस मे रिपोर्ट की कि अमुक युवक मेरे पीछे लगा है और मुझे भगा ले जाना चाहता है बाद मे तहकीकात ( Enquiry ) करने पर मालूम हुआ कि वह सब झूठ था और वह हिस्टीरिया की रोगिणी थी। इस प्रकार की अनेकों घटनाएँ दिन-रात देखने मे आती हैं।

झूठ का इलाज---इसके पहले हमे यह तै कर लेना चाहिए कि बालक किसी कारण से झूठ बोलता है अथवा अकारण, बोलने वाले ने पहली बार झूठ बोला है अथवा वह झूठ बोलने का आदी होचुका है। अत' उसकी डाक्टरी परीक्षा करके यह निर्णय करना आवश्यक है कि उसको हिस्टीरिया, मिर्गी, कोरिया, वहम, सनक आदि कोई मानसिक रोग तो नहीं है और झूठ बोलने की आदत मे किस हद तक पहुचा है और कौन से ऐब अथवा दोष को छिपाने के लिए झूठ बोला गया है। यह याद रखना चाहिए कि सब बालक एक ही कारण से झूठ नहीं बोलते हैं। अत' जैसा कारण हो वैसा ही इलाज करना चाहिए। झूठ की आदत छुड़ाने के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिएँ।

**झूठ छुड़ाने के उपाय**--(१) झूठ का ही नहीं प्रत्येक बुरी आदत का यह नियम है कि झूठ बोलने, धोखा देने, चोरी करने, घर से भागने आदि किसी भी बुरे काम के करने मे पहिली बार मनुष्य बहुत हिच-किचाता है, परन्तु यदि वह पहली बार किसी प्रकार सफल हो जाता है, तो फिर आगे के लिए बड़ी आसानी होजाती है और वह उसे बार-बार करता है। अतः झूठ को प्रथम बार मे ही पकड़ लेना चाहिए और झूठ बोलने वाले को यथा सम्भव झूठ बोलने का मौका न देना चाहिए।

(२)झूठ की खोज तथा निर्णय करने के लिए झूठ बोलने वाले से कभी भूल कर भी प्रश्न न करना चाहिए; अन्यथा वह और झूठ ही बोलेगा। अतः पहले सब प्रकार के सबूत इकट्ठे करके, झूठे का झुका हुआ सिर हकलाना, झिझकना, आख चुराना आदि देखकर यह ते कर लेना चाहिए कि बालक ने झूठ बाला है। बालक के मन में यह विचार नहीं आना चाहिए कि तुमको पूर्णत. निश्चय नही है, इसके विरुद्ध उसके मन मे यह सदेह तथा डर होना चाहिए कि कहीं तुम उसका झूठ समझ न गए हो और मन ही मन उसकी मूर्खता पर हस रहे हो। यदि ठीक प्रकार निर्णय न हो सके, तो जो कुछ झूठा कहे उसे सच समझो और उसे झूठ बोलने पर लज्जित करो। कारण कि यदि झूठे को यह मालूम हो जायगा कि तुम मे इतनी अक्ल नही है कि झूठ समझ सको, तो उसकी हिम्मत बढ़ जाती है और वह झूठ बोलने का आदी होजाता है।

(३) यदि बालक सबके सामने अथवा उनके सामने जिनसे उसने झूठ बोला है अपना झूठ स्वीकार कर ले, तो उसे किसी प्रकार का दण्ड न देना चाहिए। प्रायः हम लोग बच्चो को सच-सच बताने पर विवश किया करते हैं, यह ठीक नहीं। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि बालक किसी अपराध को छिपाने के लिए झूठ बोला करता है, अतः यदि उसे सच-सच बताने के लिए विवश किया जाता है, तो वह प्रायः झूठे सच्चे बहाने गढ़कर धोखा दे दिया करता है और यदि वह एक बार

बात बनाने और धोखा देने मे सफल हो जाता है, तो फिर धोखा देने का आदी होजाता है। अतः 'सच-सच बताओ तुमने ऐसा किया या नहीं?' जैसे प्रश्न कभी न करने चाहिए। अपितु उससे धीरे से काम लेना चाहिए और तरकीब से पूछना चाहिए। उससे कहना चाहिए कि 'हम तुम आपस में मित्र हैं और मित्र एक दूसरे से किसी प्रकार का छिपाव नहीं रखते हैं। मैं तुमको विवश नहीं करता हू, यदि तुम न बताना चाहते हो, तो न बताओ, परन्तु इससे आपस मे भेद पड जाता है। हा, इतना मै तुम्हे विश्वास अवश्य दिलाता हू कि माताजी, पिताजी अथवा अन्य किसी भी मित्र से मै नही कहूगा।'

झूठ मनवाने अर्थात् झूठ का इकरार कराने मे अधिक देर न करनी चाहिए, कारण कि सभव है कि वह तुम्हारे पूछने के पहले किसी से इन्कार कर दे और फिर तुम्हारे पूछने पर झूठा बनने के डर से तुमसे भी झूठ बोल जाय।

(४) मेरा यह निजी अनुभव है कि यदि बालक से कोई अपराध हो जाता है, तो वह पिता के सामने तो झूठ बोल जाता है, परन्तु माता को सब बात सच-सच बता देता है। इसका कारण यह है कि वह पिता से डरता है, परन्तु माता को श्रद्धा, आदर तथा प्रेम की निगाह से देखता है इसी प्रकार बालक उन मास्टरों से झूठ नही बोलता जो उसके साथ दया का वर्ताव करते हैं और उससे सहानुभूति रखते हैं। उनकी दया, सहानुभूति तथा प्रेम के द्वारा उसके ऊपर एक प्रकार का अहसान-सा होजाता है। जिसके बदले मे बालक उनसे झूठ बोलना उचित नहीं समझता। यही कारण पक्के मित्रों से सच-सच बता देने का भी है। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि दया, सहानुभूति तथा प्रेम के द्वारा हम बालक में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न कर। किसी न किसी प्रकार विश्वास दिला कर प्रायः लोग पक्के चोरों और बडे-बडे झूठों तक से सच्ची बात पूछ लेते हैं और असली भेद ले लेते हैं। अत• उन लोगों को, जिनको बालक

घृणा, डर तथा अविश्वास की निगाह से देखता हो, बालक से कभी पूछ ताछ न करनी चाहिए, अन्यथा वह उनको झूठी सच्ची बाते गढकर धोखा दे देगा। सच-सच बात कभी नही बतायगा।

(५) प्रायः लोग झूठ बोलने पर बालकों को मारा कूटा करते हैं, वह ठीक नही। इससे बालक बेहया होजाता है। यदि दण्ड देना ही है, तो सबसे बडा दण्ड यह है कि बालक पर उस समय तक किसी बात का विश्वास न करे, उसको कोई उत्तरदायित्व का काम न दे, उससे साधारणतः पूर्ववत् बातचीत न करे, जब तक कि वह अपने को सच्चा और योग्य सिद्ध न कर दे।

(६) जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि झूठ बोलने वालो मे कल्पना-शक्ति अधिक प्रबल होती है। जिन बालकों मे उत्पादन कल्पना ( Inventive imagination ) अधिक प्रबल होती है, वे प्राय' मनो-रंजक किस्से कहानिया बहुत गढा करते हैं, ऐसे बालको का मजाक उडाना अथवा उनकी प्रशसा करना ठीक नही। उनको कभी क्लास के सामने कहानी कहने का अवसर न देना चाहिए और उनकी कहानिया को उदासीन भाव से देखना चाहिए अन्यथा उनकी कल्पना-शक्ति अत्यधिक प्रबल होजायगी और वे पक्के झूठे होजायगे। इस प्रकार की झूठी सच्ची मनगढन्त बाते करने का मुख्य कारण बालक के जीवन का संकुचित होना और उसमे उत्साह न होना है, अतः इस बात की आव-श्यकता है कि उसके अनुभवो को बढ़ाया जाय, उसे बाह्य-जगत का ज्ञान कराया जाय। इसका टूर (tour) यात्रा आदि पर ले जाया जाय और मनोरजक दृश्य दिखाए जाय, ताकि यह सच्ची, वास्तविक और जीवनपूर्ण कहानिया तथा बाते कह सके। इसके अतिरिक्त बडे बच्चो को सुन्दर कहानिया, कविताए आदि भी पढने को दी जा सकती हैं। ऐसे बालकों को सिनेमा दिखाना और परियों की कहानी सुनाना बडी भारी भूल है। इतना ही नही, अपितु उन्हें बच्चों की

उत्पत्ति तथा माता-पिता के काम-धधे आदि के विषय मे भी स्पष्टतया पूर्णरूप से बताना ठीक नही, परन्तु इसके यह मानी नहीं हैं कि उनके इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर न देकर अथवा झूठी-सच्ची बातो मे बहकाकर उसकी जिज्ञासा-शक्ति नष्ट कर देनी चाहिए, उसके प्रश्नों का उत्तर अवश्य देना चाहिए, परन्तु वह नग्न सत्य न होना चाहिए और बहुत ही नपी-तुली भाषा मे होना चाहिए।

---

११

# चोरी करना

**चोरी**—चोरी करने मे मनुष्य दूसरो की वस्तुओं पर छिपकर अधिकार कर लेता है। किसी वस्तु को पाना अथवा उस पर अधिकार करना (acquisitiveness) एक नैसर्गिक प्रवृत्ति है। इसके तीन अङ्ग हैं—पाना, छिपाना और इकट्ठा करना। प्राप्त करने के लिए ईश्वर ने प्रत्येक प्राणी को एक अस्त्र दिया है, उदाहरणार्थ गिलहरी अपने अगले पैर से, बाज अपने पजे से और बदर अपने हाथ से किसी वस्तु पर अधिकार करता अथवा पकडता है। निम्न श्रेणी के जानवर जैसे चौपाए, और चिड़िएं भूख लगने पर अपने मुह अथवा चोंच से किसी वस्तु को पकडते है। मनुष्य जाति के जीव भी अपने हाथ से ही चीजें पकड़ते हैं। एक छोटा-सा बच्चा भी चमकीली अथवा रगीन वस्तु देखकर तुरत उसे अपनी अगुलियो से पकड लेता है। अधिकार प्राप्त करने अथवा पाने मे एक विशेष प्रकार का आनन्द आता है। इस आनन्द को अधिक देर तक उठाने के लिए अथवा भविष्य में उपयोग करने के लिए प्राणी उस वस्तु को आगे काम मे लाने के लिए छिपा कर रख देता है और यथा-शक्ति उसे छिपा रखता है और प्रयोग में नहीं लाता है। उदाहरणार्थ गिलहरी सुपारी को कुतरने के बदले उसे छिपा कर रख देती है, कुत्ता अधचबी हड्डी को कल के लिए रख देता है, बहुत से मनुष्य, विशेषकर स्त्रियाँ, रुपये–पैसे को कलेजे से लगा लगा कर रखते हैं और बडी मुश्किल से खर्च करते हैं। किसी वस्तु को आगे के लिए रखने के लिए उसको सुरक्षित स्थान में रखना आवश्यक

है। अतः अधिकार-प्राप्ति के साथ उस वस्तु को आगे के लिए रखने और छिपाने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। किसी वस्तु के पाने तथा छिपा कर आगे के लिए रखने मे जो आनन्द आता है, उसे यदि प्राणी एक बार उठा लेता है, तो वह उसे केवल देर तक स्थिर ही नहीं रखना चाहता, अपितु मार कर उठाना भी चाहता है। अतः किसी वस्तु को पाने और छिपाने की प्रवृत्ति के साथ-साथ उसके इकट्ठा करने से उसके इकट्ठा करने की आदत पड जाती है और धीरे-धीरे वह उसके प्रेम (Sentiment) मे परिवर्तित हो जाती है और अत मे इकट्ठा करने वाले की दशा एक कजूस की सी हो जाती है। वह न खाता है न खर्चता है, बस देख-देख कर ही प्रसन्न रहता है। साइलस मार्नर (Sieas Marner) की तरह वह उसे बार बार उठाता-धरता है और आँखे तृप्त करता है। यौवनोद्गम-काल मे प्रायः बच्चे टिकट, सिगरेट की डिब्बिए, दियासलाई की डिब्बिए तस्वीरे, पख, पत्तियाँ, आदि इकट्ठा किया करते हैं। ये इस अवस्था के मुख्य शौक है चोरी अधिकार की प्रवृत्ति (Acquisitiveness) का ही अनुचित विकास प्रयोग अथवा परिवर्तित रूप है, परतु इससे यह न समझना चाहिए कि चोर केवल किसी वस्तु को पाने के लिए ही चोरी करता है। जो बालक चोरी करना जानता है वह यह भी समझता है कि चोरी करना बुरी बात है। केवल किसी वस्तु को पा जाने भर के लिए चोरी तो पागल और कुछ मानसिक रोगी ही करते हैं, अन्यथा चोरी के साथ अधिकार-प्राप्ति के अतिरिक्त कोई कारण विशेष अवश्य छिपा रहता है अर्थात् अधिकार की प्रवृत्ति के साथ कोई अन्य प्रवृत्ति भी मिली रहती है।

**चोरी करने के कारण**:—(१) भूख—हम देखते हैं कि छोटे बच्चे खिलौना आदि जो चीज पा जाते है, उसे हाथ से पकड कर सीधा मुह मे ले जाते हैं और चूसने लगते हैं। अतः उसे किसी वस्तु को पकड़ने के अतिरिक्त मुह मे रखने में भी आनन्द आता है। सभवत वे ऐसा भूख

मिटाने के लिए करते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिको के मतानुसार इस समय काम-शक्ति मुख मे केन्द्रित होती है। यही कारण है कि उसे प्रत्येक वस्तु मुंह मे रखने में एक प्रकार का स्वाद अथवा आनन्द आता है। अतः छोटे बच्चो की चोरियाँ प्रायः भूख मिटाने अथवा जिह्वा के स्वाद को तृप्त करने के लिए रोटी, पूरी, फल, मिठाई आदि खानी-पीनी वस्तुओ की होती हैं। यही कारण है कि प्रायः बच्चे हम लोगों के घरों में मीठा-सीठा फल-फूल आदि चुपके से उडाकर खा जाते हैं और पूछने पर कह देते हैं 'अम्माँ, मैंने नहीं खाया है चूहा ले गया होगा।' कृष्ण जी की माखन-मिश्री की चोरी तो प्रसिद्ध ही है। एक बार एक बालक अपनी माँ के पानदान मे से सुपारी चुरा ले जाता था। मीठी होने के कारण होम्योपैथिक दवाओं की गोलियाँ, शकर आदि की चोरी करके खा जाना तो बालको के लिए एक साधारण-सी बात है। कभी-कभी जब बालक किसी कारणवश घर से क्रोधित होकर अथवा कोई अपराध करने पर डर के मारे घर से बाहर रह जाता है या भाग जाता है, और रात हो जाती है तो वह अधिक भूख लगने पर किसी दुकान से खानी-पीनी वस्तु अथवा पैसा-कौड़ी जिस से वह खाना ले सके चुरा लेता है। कभी-कभी अकाल अथवा तेजी आदि अन्य किसी कारण से भूख को तृप्त करने वाली खानी-पीनी वस्तुओं के अतिरिक्त कपड़ा आदि जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुएँ भी चुरा लेता है। फकीर लोग प्रायः इस प्रकार की चोरियाँ करते दिखाई देते हैं। एक बार मैंने अखबार मे पढ़ा था कि एक आदमी देहली में एक दुकान से जीत की खुशी में लगा हुआ एक झंडा लेकर भागा। पूछने पर मालूम हुआ कि वह और उसके बच्चे भूख से पीड़ित थे और तन से नगे। वे नगे होने के कारण लज्जावश बाहर नही आ सकते थे, अतः उसने अपनी स्त्री तथा बच्चों के तन ढकने के लिए उस कपडे को चुरा लिया और इसी प्रकार के दो तीन टुकड़े चुराने की ताक में था।

**(२) आत्म-प्रदर्शन अथवा अहंकार (Vanity)**—प्रायः अन्य बालकों

के पास फैशन की वस्तुए देखकर बालक अहंकारवश अपने को दिखाने के लिए अपने माँ-बाप तथा दूसरों की चीजे चुरा लेते हैं। वास्तव मे उनका ध्येय चोरी करना नहीं होता, वे केवल इतना चाहते हैं कि दूसरो को दिखा सकें कि हम भी तुमसे किसी प्रकार कम नहीं हैं, हमारे पास भी अमुक वस्तु है। उदाहरणार्थ दूसरी लडकियों के क्लिप, साड़ीपिन आदि लगाए देखकर लड़किया अपनी माँ के क्लिप, पिन आदि उड़ा ले जाती हैं और दूसरे लडकों के पास फाउन्टेन पैन, लाल नीली-पैंसिल, कलम आदि देखकर प्रायः लड़के अपने बाप, भाई अथवा अन्य बच्चों की पैंसिल कलम आदि चुरा लेते हैं। स्कूल में कलम, पैंसिल, रबड़ आदि की चोरियों का यही कारण होता है; परतु इसके ये मानी नहीं कि स्कूल उन्हें चोरी सिखाता है, स्कूल में चोरी करने का नम्बर तो घर में चोरी करने के बाद आता है। वह चोर तो पहले घर में ही हो जाता है।

(३) शौक अथवा वस्तु-प्रेम ( Sentiment )—जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि बडे होने पर १२-१३ वर्ष की आयु मे बालकों मे किसी वस्तु विशेष को इकट्ठा करने का शौक, धुन अथवा लत पैदा हो जाती है। प्रायः लडकियों को बचपन में गुड़िएँ, खिलौने, पचगुट्टे, शीशे की तीलियाँ, मोती, सीपी आदि जमा करने का और बड़े होने पर कपड़े-लत्ते और गहने-जेवर इकट्ठा करने का शौक होता है और लड़कों को बचपन मे जानवरों के पर, घोंसले, पत्तियाँ, टिकट, तस्वीरें, सिगरेट की डिब्बिए, दियासलाई की डिब्बिए, पतगे आदि और बडे होने पर सुन्दर तस्वीरें, रूमाल, फैशन तथा खेल की वस्तुएँ जोड़ने तथा कबूतर, लाल आदि जानवर पालने का शौक हो जाता है। अतः वे जहाँ कहीं भी अपने शौक की चीज पा जाते हैं उसे चुरा छिपाकर जैसे भी हो, उड़ाकर ले आते हैं।

(४) क्रोध और बदला—कभी-कभी यदि बालक किसी बात पर किसी से क्रुद्ध हो जाता है, तो वह उसको तंग करने के लिए उसकी कोई वस्तु

चुरा ले जाता है। उदाहरणार्थ यदि माँ एक बालक को उसके भाई आदि दूसरे बालक से अधिक प्यार करती है, तो वह प्रायः उसको तंग करने के लिए उसके फल-फूल, मीठा-सीटा, पैसे-कौडी आदि उडा ले जाता है। जिससे उसके मन मे यह सतोप हो जाता है कि उसने बदला ले लिया।

(४) **खोज का फल**—कभी-कभी ऐसा होता है कि बालक पख, पत्तियो आदि की खोज मे घूमने निकल जाता है और यदि साथ ही कोई चीज पा जाता है, तो उसे माले-मुफ्त (लूट का माल) जानकर ले आता है। एक उदाहरण से यह विषय स्पष्ट हो जायगा। एक बुढिया नदी मे स्नान करने जाया करती थी, वह कभी आम, कभी साग, कभी कोई फल-फूल आदि जो कुछ भी रास्ते मे मिल जाया करता था ले आया करती थी, केवल यह सोचकर कि, चलो इतनी दूर तो आये ही हैं यह ही लेते चले। इसी प्रकार एक नौकर स्कूल की छुट्टी होने पर सब कमरे देखा करता और जो कुछ पा जाता था उसे अपनी खोज का फल समझकर घर ले जाता था।

**चोरी का इलाज**—कोई भी एक बार किसी कारण चोरी करने से चोर नही हो जाता है, वह एक बार चोरी करने मे सफल होने पर बार बार चोरी करता है और बाद में चोरी करने का आदी और पक्का चोर हो जाता है। अतः चोरी का इलाज करने के पहले यह देखना चाहिए कि चोर चोरी की सीढी के कौन-से डंडे तक पहुँचा है। अतएव बालक की व्यक्तिगत हिस्ट्री ढूँढनी चाहिए।

**चोरी की सीढी**- ( १ ) सबसे पहले लगभग ६ वर्ष की अवस्था मे बालक भूख तथा जिह्वा के स्वाद आदि के कारण खानी-पीनी वस्तु की चोरी सीखता है। ( २ ) फिर वह धीरे-धीरे घर में रखे हुए अलमारी अथवा ताक पर पैसे से उडा ले जाता है और बाद मे अभ्यस्त होने पर वह बटुए तथा ताले-कुंजी मे रखे हुए रुपए-पैसे ढूंढ-ढाँढ कर भी ले जाता है। ( ३ ) तीसरी श्रेणी उस समय आरम्भ होती है

जब वह घर के बाहर स्कूल में भी लड़कों और मास्टरों की कलम, पेंसिल कापी, किताब, चाक, रोशनाई आदि की भी चोरी करने लगता है। ( ४ ) चौथी श्रेणी उस समय आरम्भ होती है जब कि वह तरकारी वालों की तरकारी, खोमचे वालों का खोमचा, मिठाई वालों की मिठाई, बिसातियों के खेल--खिलौने आदि चुराने लगता है। ( ५ ) पाँचवी श्रेणी उस समय आरम्भ होती है जब कि वह घर का सामान उठा ले जाता है और बेच आता है, बाद में वह दूसरों के घर की चीजें भी उठा ले जाता है और बेच आता है। ( ६ ) अन्त में वह पक्का चोर और जालिया हो जाता है और बैंक की चैक तथा अन्य कागजों पर जाली दस्तखत भी करने लगता है।

इस प्रकार हम चोरी की सीढ़ी देख कर आनी से मालूम कर सकते हैं कि बालक कितना पक्का चोर हुआ है। खानी--पीनी वस्तु से रुपए--पैसे की, घर से बाहर की, सौदे वालों का सौदा लूटने और चुराने से घर का तथा दूसरों का सामान उठा ले जाने और बेच आने की और इससे भी अधिक जाली दस्तखत बनाने, दुकानें आदि लूटने, कूमल या सेंध आदि लगने की चोरी अधिक उच्च कोटि की है।

**इलाजः**--प्रायः लोग यह समझते हैं कि यदि चोर को यह समझाया जाय कि चोरी करना बुरा है, तो वह सभवत, चोरी करना छोड़ देगा और यदि इतने पर भी न माने, तो उसको अच्छी तरह मारा कूटा जाय जिससे वह डर कर चोरी करना छोड़ देगा। प्रायः माँ बाप तथा अध्यापक यही इलाज किया करते हैं, परन्तु वे गलती पर हैं, ऐसा समझना उनकी भूल है। चोर यह तो स्वय ही समझता है। कि चोरी करना बुरा है, परन्तु किसी कारण विशेष से वह उसका इतना आदी हो गया है कि उसे छोड़ नहीं सकता। इसके अतिरिक्त चोरी अधिकार की प्रवृत्ति का एक कुत्सित रूप है और एक नैसर्गिक प्रवृत्ति को कुचलना और उसके विकास को रोकना न तो उचित ही है और न संभव ही,

ावश्यकता तो केवल इस बात की है कि वह उसका उचित प्रयोग करे नुचित नहीं। चोरी छुड़ाने और अधिकार-प्रवृत्ति का उचित प्रयोग था विकास करने के लिए निम्न लिखित उपाय करने चाहिए.-

**उपायः**-स्वत्त्व ( owner ship )-- ( १ ) यदि कोई बालक चोरी करता है और वह पकड़ा जाता हैं, तो प्रायः मा-बाप उसको जेब खर्च देना बन्द कर देते है, जिसका फल यह होता है कि चोरी करने का एक कारण उत्पन्न होजाता है और बालक चोरी करना छोड़ने के बदले और दूनी तेजी तथा जोश के साथ करने लगता है। यद्यपि देखने मे यह बड़ी उलटी सी प्रतीत होती है, तथापि वास्तव में इसका सच्चा उपाय उसको दूने पैसे देना है। यदि उसको एक आना रोज जेब खर्च को दिया जाता है, तो उसको दो आना दे दा, यदि उसने चार आने चुराए हैं, तो उसे आठ आना दे दो। कहने का तात्पर्य यह है कि उसके साथ सख्ती का बर्ताव करने और उसे दड देने के बदले उसके साथ सहानुभूति दिखानी चाहिए और दया का बर्ताव करना चाहिए और उसको इतना जेब खर्च देना चाहिए कि वह खर्च करने के बाद कुछ बचा भी सके और साथ ही बचे हुए पैसे रखने के लए उसे एक सदूकची या गोलक दे देना चाहिए। इस प्रकार वह कुछ पैसे बचा सकेगा, अपना उत्तरदायित्व समझेगा और जब उसे अपने पैसे का दर्द होगा तो वह दूसरे के पैसे का भी दर्द करेगा। प्रायः लोग कहते हैं कि छोटे बच्चे अपना-विराना क्या समझे, परन्तु यह बात नहीं है। छोटा बच्चा अपने मास्टर के चाक के डिब्बे मे से एक चाक की बत्ती भले ही चुरा ले, परन्तु अपने साथी की अकेली बत्ती कभी नहीं चुरायगा, वह अपनी मा को दो आने मे सात पैसे की तरकारी भले ही लाकर दे, और एक पैसा बचा ले, परन्तु उसके सदूक मे से कभी एक पाई नहीं चुरायेगा, वह हर एक व्यक्ति की चीज चुरा सकता है परन्तु किसी ग़रीब बुढ़िया या ऐसे व्यक्ति की, जो उस पर दयालु हो और प्रेम

भाव रखता हो, कभी कोई चीज नही चुरायगा। अतः स्वत्त्व (Ownership) की प्रवृत्ति का उचित प्रयोग करके बालक पर उत्तरदायित्व सौंपकर चोरी की आदत छुडाई जा सकती है। मेरा निजी अनुभव है कि एक बार मेरा एक बच्चा प्रायः मेरी जेब से पैसे चुराकर ले जाता था, मैंने उसको एक रुपया महीना देना आरम्भ कर दिया और एक टीन का डिब्बा और ताला उसको रखने के लिए दे दिया। फल यह हुआ कि उसने पैसे चुराना ही नही छोड़ दिया अपितु व्यर्थ खर्च करना भी छोड़ दिया और जल्दी ही दो-तीन मास मे कई रुपए जोड लिए।

(१) उत्तरदायित्व—यदि चोर पर उसी वस्तु का उत्तरदायित्व छोड दिया जाय जिसे वह चुराता है, तो वह चोरी करना छोड देता है। एक बार एक लड़का प्रायः दूसरे लड़कों की किताबे चुरा लिया करता था और और बाजार मे बेचकर पैसो की चाट खा-पी जाया करता था। मैंने उसके पिता से उसके जेब खर्च का उचित प्रबध करा दिया और उसे क्लास का मानीटर बना दिया। अब उसके पास पैसे भी रहने लगे और उसे अपने पैसे का दर्द होने लगा, फिजूल खर्च करना बन्द होगया और साथ ही वह अपने साथियो की पुस्तको की रक्षा करना भी अपना कर्तव्य समझने लगा और सोचने लगा कि यदि अब किसी की पुस्तक गई, तो मेरी ही बदनामी होगी। इस प्रकार वह अपना उत्तरदायित्व समझने लगा और उसने पुस्तके चुराना बन्द कर दिया।

(२) कमाना अथवा पैदा करना—किसी वस्तु को पा जाना भर ही काफी नहीं है। उसको पा जाने की अपेक्षा अपने हाथों से कमाने की आवश्यकता है (To earn rather then to hold in necessary) प्रायः बच्चे को उसके एक आना चुराने के पूर्व उसे दो आने भले ही दे दें, परन्तु इससे उसे पूर्ण संतोष नहीं होता, पूर्ण सन्तोष उसे उसी समय होता है जब कि वह दो आने स्वय अपने हाथों से परिश्रम करके पैदा करता है। अपने हाथ से परिश्रम के साथ कमाया हुआ खाना महा-

राजिन के हाथ के बनाए हुए खाने से कहीं अधिक स्वादिष्ट प्रतीत होता है। इसी प्रकार अपनी मेहनत से कमाए हुए चार पैसे दूसरे के यूं ही दिए हुए चार आने से अधिक प्यारे और कीमती लगते हैं। अपने हाथो से परिश्रम करके चार पैसे पैदा करने मे कुछ आनन्द दूसरा ही है। अतः पैसे आदि देने के पूर्व कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि बच्चा वह पैसे परिश्रम करके अपनी मेहनत के फल स्वरूप पा सके। एक बार एक बालक प्रायः घर से पैसे चुरा ले जाता था, मैंने उसके पिता से कहा कि यह जो कुछ घर का काम धधा किया करे—आटा पिसाना, तरकारी लाना, पढना आदि, तो इसके फल स्वरूप उसे कुछ पैसे दिया करो। उन्होंने ऐसा ही किया। थोडे दिन बाद लडके के पास कुछ दाम जमा होगए, वह उन्हे सम्भाल-सम्भाल कर रखने लगा और उसने पैसे चुराने बन्द कर दिए।

(४) शर्तें—प्रायः बालक शर्तें भी बहुत पसन्द करते हैं। यदि तुम उनकी मनचाही वस्तु जिसे वह प्रायः चुरा ले जाते हैं किसी शर्त पर दो, तो वह उसे चुराना बन्द कर देते है। एक बार एक आदमी के बाग मे प्रायः बच्चे आया करते थे और उसके तमाम पेडो के फल खा जाया करते थे, उसने उन बालको के सरदार से कहा 'देखो भाई, इनमें से अमुक पेड तो तुम मेरे लिए छोड दो और शेष पेड़ो मे से तुम फल खा सकते हो।' लड़कों ने यह शर्त मान ली और भविष्य में अपने आप ही उस पेड़ के फल नही खाए अपितु दूसरे बालकों को भी छूने तक नही दिए।

उक्त प्रयोगों से हम बालकों का चोरी करना छुडा सकते हैं परन्तु पक्के चोरों और डाकुओं के साथ इनसे काम नही चल सकता, उनके लिए तो जेल ही ठीक है। इसके अतिरिक्त और किसी प्रकार सोसायटी तथा धन की उनसे रक्षा नही हो सकती।

---

# १२

# भगोड़ापन

## बालकों का स्कूल अथवा घर से भाग जाना

भागना-दो प्रकार का होता है, स्कूल से भागना और घर से भागना। स्कूल अथवा घर से चले जाना कोई बड़ा भारी अपराध नहीं है, परन्तु समस्त बुराइयों का श्रीगणेश इसी से होता है। मान लो कोई लड़का पाठ याद करके न लाने अथवा घर पर करने के लिए दिया हुआ काम पूरा न करने के कारण स्कूल नही जाता है अथवा घर मे कोई हानि अथवा अपराध करने पर पिटने के डर से घर से भाग जाता है और कोई उससे भागने का कारण पूछता है, तो वह उससे झूठा-सच्चा कोई फबता हुआ कारण गढकर बता देता है और एक बार सफल होने पर बार-बार वैसा करने का आदी हो जाता है। मेरा निजी अनुभव है कि जो लड़के घर का काम करके नहीं लाते हैं अथवा जिन्हे पाठ याद नही होता है, वे या तो उस घंटे मे क्लास में ही नहीं आते हैं अथवा पेशाब, पैखाने का या कापी घर पर भूल आने का बहाना करके उड़ जाते हैं। धीरे-धीरे वे बहाने बनाने और झूठ बोलने मे पक्के और भागने के आदी हो जाते हैं। यही दशा घर से भागने पर भी होती है। प्रायः बालक खेलने अथवा अन्य किसी कारण से घंटो के लिए बाहर निकल जाते हैं और पूछने पर कह देते हैं कि 'मैं अमुक लड़के से कापी लेने गया था'। इस प्रकार अब वे घंटे दो घंटे तक भागने के आदी हो जाते हैं, तो धीरे-धीरे दिन भर के लिए लापता हो जाते हैं। प्रायः लड़के घर से स्कूल जाने के लिए आते हैं, परन्तु इधर-उधर खेलते कूदते रहते हैं

और छुट्टी का समय आने पर लौट जाते हैं। इसके पश्चात् वे कभी कभी शाम तक घर नहीं पहुचते और जब अधिक देर हो जाती है, तो यह सोच कर कि यदि माता जी या पिता जी जागते होंगे, तो वे पीटेंगे। अतः देर तक बाहर रहते हैं और माँ-बाप के सो जाने पर चुपके से घर आ जाते हैं। उधर भूख भी सताती है, अतः वे कहीं से खानी-पीनी वस्तुए अथवा उनके लेने के लिए रुपए-पैसे चुरा लेते हैं। इस प्रकार वे चोरी भी करने लगते हैं। अतः हम देखते हैं कि केवल भागने मात्र से बालक झूठा और चोर भी हो जाता है।

**भागने के कारण**-(१) **शिकार**-यौवनोद्गम काल मे बहुत से बालकों मे कुत्तो को साथ लिए खरगोश, हिरन आदि का शिकार करने, बंसी लिए हुए मछली का शिकार करने, गुलेल लिए हुए चिड़िये मारते फिरने, चिड़ियो के घोंसले, फल-फूल आदि खोजते फिरने का शौक हो जाता है। किसी-किसी बालक मे तो पीछा करने का यह शौक इतना अधिक होता है कि यदि शहर मे अन्य कोई चीज पीछा करने को नही मिलती तो वे लडके लड़कियों का ही पीछा करते हैं। इस शिकार करने और पीछे लगने की धुन मे वे प्रायः स्कूल से और घर से भाग जाते हैं।

(२) **घूमने का शौक**—यौवनोद्गम काल मे नए अनुभव करने और नए दृश्य देखने के लिए घूमने और यात्रा करने का भी शौक हो जाता है। इनको स्कूल छोटा और घर तग मालूम होता है। यही कारण है कि बहुत से बालक यौवनोद्गम काल मे सौदा सुलफ बेचने अथवा फेरी लगाने वालो के साथ घर से भाग जाते हैं।

(३) **घर की निर्धनता**--बालकों को खाने-पहनने, पढने-लिखने के अतिरिक्त मनोरंजन की भी आवश्यकता है। हमारे भारतवर्ष मे अनेकों ऐसे माता-पिता हैं जो दिन-रात पेट भरने के साधन मे लगे रहने के अतिरिक्त न तो भली भांति बालकों की देख रेख ही कर सकते हैं और

न घर मे उनके मनोरंजन के साधन ही जुटा सकते हैं और न उनका महत्त्व ही समझते हैं। उनके घर मे बालकों के खेलने के लिए आवश्यक खेल-खिलौने तक नही होते। इतना ही नहीं बहुत से घरों मे तो खेलने के लिए बड़ा आगन अथवा पास में कोई मैदान या पार्क और बैठने-उठने तथा पढ़ने लिखने के लिए कोई कमरा तक नहीं होता। फल यह होता है कि बालको को मनोरजन अर्थात् खेलने-कूदने के लिए गलियों में जाना पड़ता है और कुसंग में पड़कर आवारा हो जाते हैं और प्रायः घर से भाग जाते हैं।

(४) घर का कुप्रबंध—कभी-कभी ऐसा होता है कि माँ अथवा बाप मे से एक बालक को डाटता है और दूसरा उसका पक्ष ले लेता है, अथवा माँ-बाप तनिक देर मे तो बहुत सख्ती से डाटते-पीटते हैं और तनिक ही देर मे पानी हो जाते हैं और बालक को प्यार करने लगते हैं। अथवा माँ बाप बालक से इकलौता आदि होने के कारण इतना प्यार करते हैं या वृद्ध होने के कारण इतना डरते हैं कि बालक जो चाहे सो करता रहे वे कुछ कहते ही नहीं। फल यह होता है कि बालक बिल्कुल निडर हो जाता है और जहाँ चाहे वहाँ बैठता-उठता है और जो चाहे सो करता है और जहा चाहे वहाँ चल देता है। कभी-कभी माँ-बाप बालक पर इतनी सख्ती रखते हैं कि उसे घर से निकलने तक नहीं देते। फल यह होता है कि वह स्कूल आदि जाते समय जब भी मौका लगता है, भाग जाता है।

(५) पढ़ने लिखने में अरुचि—कभी कभी जब बालक मानसिक दुर्बलता, रोग आदि के कारण क्लास मे पिछड़ जाता है, तो उसे पढ़ना एक भार मालूम होने लगता है और धीरे-धीरे वह कमजोरी इतनी बढ़ जाती है, कि बालक को पढ़ने लिखने से अरुचि हो जाती है और वह उससे छुटकारा पाने के लिए स्कूल तथा घर छोड़कर बाहर चल देता है।

(६) अध्यापक के प्रति घृणा—कभी-कभी विद्यार्थी तथा अध्यापक

में किसी कारणवश झगडा हो जाता है और विद्यार्थी अध्यापक को घृणा की दृष्टि से देखने लगता है। ऐसी दशा मे विद्यार्थी का स्कूल मे तथा पढने-लिखने मे मन नही लगता है और ऊब कर उस अध्यापक के घटे से अथवा सब घटों से और अन्त मे जान छुड़ाने के लिए घर तक से भाग जाता है।

(७) **धन कमाने की इच्छा**—१४-१५ वर्ष की अवस्था में पढने लिखने मे मन न लगने, घर की आर्थिक दशा अच्छी न होने के कारण प्रायः बालक पढ़ना लिखना छोडकर घर से चल देते हैं और फौज आदि में नौकरी कर लेते है।

(८) **इत्तिफाक अथवा संयोग**—कभी-कभी संयोगवश ऐसे अवसर आ जाते हैं कि सहसा स्कूल अथवा घर से भागने का विचार हो जाता है। उदाहरणार्थ मान लो किसी कारण से किसी लड़के को स्कूल पहुँचने में देर हो गई। संयोग से फाटक पर कोई दूसरा लड़का मिल गया, उसने कहा-'अजी, घटी बजे तो बड़ी देर हो गई। अब जाओगे तो मास्टर साहब पीटेंगे अथवा बेंच पर खडा कर देंगे। इससे चलो कही घूम आए। कल को आज की अर्जी दे देंगे।' बस वह कहने में आ जाता है और चल देता है। धीरे-धीरे उसे भागने की आदत हो जाती है और वह पक्का भगोडा हो जाता है।

( ९ ) **हिस्टीरिया, मिर्गी, दिल का बैठना आदि रोग**—कभी-कभी हिस्टीरिया, मिर्गी आदि के दौरे मे बालक स्कूल तथा घर से भाग जाते हैं और उनको पता भी नही चलता। उनको अपने कार्य का पता उस समय चलता है जब दौरा समाप्त हो जाता है। एक बार इसी प्रकार का एक रोगी घर से भाग गया, उसने परदेश मे जाकर एक दूकान खोली और बडा लाभ उठाया, जब लगभग दो-ढाई साल बाद दौरा समाप्त हुआ तो उसे सुध आई कि मै कौन हू और यहाँ कैसे आगया ?

(१०) **अपराध**—कभी-कभी जब बालको मे कोई बड़ी हानि अथवा

अपराध हो जाता है, तो वे डर के मारे घर में अथवा स्कूल मे नही जाते और भाग ज.ते हैं और कुछ समय बीतने पर, जब कि वे समझते है कि अब अध्यापक अथवा माता-पिता का क्रोध कम होगया होगा और वे उनकी गैर हाज़िरी से परेशान होने के कारण उससे कुछ न कहेंगे, तब लौटते हैं। इस प्रकार के अपराध कोई चीज तोड़ फोड़ डालना, चोरी आदि करना अथवा काम सम्बन्धी अपराध (Sexual crime) हैं।

**भगोड़ेपन का इलाज**—इसका इलाज करने के पहले बालक की व्यक्तिगत हिस्ट्री देखनी चाहिए और उसकी डाक्टरी परीक्षा कराकर देखना चाहिए कि बालक को हिस्टीरिया, मिर्गी आदि कोई मानसिक रोग तो नहीं है। तत्पश्चात् निम्नलिखित उपाय करने चाहिए—

**उपाय**—(१) बालक को घर तथा स्कूल में अधिक स्वतन्त्रता देनी चाहिए और यदि शासन अत्यन्त कड़ा हो तो कुछ ढील कर देनी चाहिए। ईश्वर ने उसको हाथ पैर दिए हैं वह उनको चलाये फिरायेगा अवश्य। अनः उनके उचित विकास के लिए अच्छी तरह घूमने फिरने, खेलने कूदने का मौका देना चाहिए।

(२) बालक का चुपके से पीछा करके देखना चाहिए कि वह भाग कर कहाँ जाता है और क्या करता है? देखो उसकी रुचि क्या है? वह सिनेमा जाता है, शिकार करता है, तस्वीरे देखता है अथवा दूकाने देखता है। उसकी इन रुचियों को रोकने के बदले उचित ढग से उत्तेजित करना चाहिए। अतः माँ बाप तथा अध्यापकों को चाहिए कि उसे अपने साथ स्काउटिंग के ट्रिप (trip) पर, इक्सकर्शन (excursion) पर, शहर की सुन्दर-सुन्दर इमारते बाग बागीचे आदि दिखाने, तथा इधर-उधर घुमाने ले जाएं।

(३) बालक की रुचि, बुद्धि, चरित्र आदि देखकर उनके अनुसार शिक्षा तथा शासन प्रणाली को परिवर्तित कर लेना चाहिए। यदि विद्यार्थी तथा

अध्यापक में न पटती हो तो उसका कारण खोज कर उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि अध्यापक विद्यार्थी को महा धूर्त और बुद्धू ही समझता हो, तो उसका क्लास अथवा स्कूल बदलवा देना चाहिए और किसी आर्ट ( Art ) अथवा टेकनीकल (Technical) स्कूल में भेज देना चाहिए जहा वह चमक सके और अपनी योग्यता दिखा सके। इसके विपरीत अध्यापक को अपनी शिक्षा-प्रणाली और अपने बर्ताव का ढग ऐसा बनाना चाहिए कि बालक भागने से पढने को और घर से स्कूल को रुचिकर समझे।

माता-पिता को चाहिए कि बालक के लिए खेल-खिलौने, गेंद-बल्ला आदि खेलने का सामान तथा अन्य साधन जहाँ तक संभव हो जुटा दे और बालक को खेल-कूद के लिए क्लब आदि । जाने दे और उसे उचित तथा आवश्यक स्वतन्त्रता दे। यदि माँ-बाप गरीबी के कारण खेल तथा मनोरजन के साधन जुटाने में असमर्थ हो तो उनकी आर्थिक सहायता करनी चाहिए और यदि वे अपढ़ होने अथवा अन्य किसी कारण से खेलों का महत्व न समझते हों तो उनको समय-समय पर समझाना चाहिए।

उक्त उपायों से हम बालकों का भागना रोक सकते हैं।

---